सीताराम सीताराम सीताराम

श्रीमैथिली रमणो विजयते

श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः

श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः

श्रीसीताराम-तत्त्व-प्रकाश

नाम-रूप-लीला-धामात्मक

पूर्वार्ध

संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक
'सीताशरण'

सीताराम सीताराम सीताराम

❀ ॐ गं गुरवे नमः ❀

❀ श्रीमैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ❀

❀ श्रीमतेभगवते जगतगुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

* श्रीसीताराम-तत्त्वप्रकाश *

नाम, रूप, लीला, धामात्मक--पूर्वार्द्ध

संग्रहकर्ता लेखक एवं प्रकाशकः-

अनन्त श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्य वंशावतंश

अनन्त श्रीजानकीशरणजी महाराज "मधुकर"

तच्चरणारविन्द भ्रमर

सीताशरण

श्रीचारुशीला मन्दिर, श्रीचारुशीला बाग, श्रीजानकीघाट,

श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण १०२५ प्रति	माघकृष्ण सप्तमी श्रीरामानन्द जयन्ती सं० २०३२ वि० सन् १९७६ ई०	न्यौछावर १५) रु०

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी ।

ग्रन्थ लेखक का संक्षिप्त परिचय

लेखक का जन्म उ० प्र० शाहजहाँपुर जिलान्तर्गत ग्राम शाहपुर भुड़िया के निकट रहीमपुर में तोमर क्षत्रीयवंश में शौभाग्यशाली श्रीदिशासिंह जी की स्वधर्मपत्नी के गर्भसे भाद्रपद कृ०अष्टमी १६३२ ई०में हुआ। वालकके जन्मसे ८ दिनपूर्व ही श्रीरामगंगा नदी ने सम्पूर्ण ग्राम को अपने गर्भ में ले लिया। इस कारण वालक नदी के रेते के टीले पर जन्म लिया। उस समय में, उसरेतेका टीला चारों ओर नदी के जलसे घिरा हुआ था। जन्म नक्षत्र मूल था। इससे ग्रामवासी वालकको अभाग्यशाली दृष्टि से देखे। कुछ लोग वालक को नदीमें प्रवाह करदेने की सम्मति दे रहे थे कारण, सवोंको भय था कि जन्म के पूर्व ही ग्राम सर्व स्वाह होगया, आगे न जाने क्या क्या दुर्दशा सामने आयेगी। परन्तु, माता–पिता को पुत्रसे प्रेम था, किसी की वात पर ध्यान न दिया। प्रथम वर्ष में ही वालक को सूखा रोग पकड़ लिया। गाँव वाले समझे कि स्वयं यह अभागा वालक अव संसारसे विदा हो जायगा। परन्तु "हरिइच्छा वलीयसी चरितार्थ हुआ वालक आरोग्य हो गया। ७ वर्ष की आयु में पिता का स्वर्गवास हो गया। १६५० में माता भी चल वसी। शिक्षा प्राप्तकर १६५३ में वालक विरक्त हो गया। पीलीभीत जिला के अमरैया खाता मढ़ी के अनन्त श्री लालवावा फलाहारीजी तपस्वीजी की छावनीकी परम्परावालों ने गुरुपूर्णिमाको श्रीवैष्णव पंचसंस्कार कर कर श्रीयुगल षड़ाक्षर श्रीसीताराममन्त्र की दीक्षादी। उपरोक्त वालक कानाम गुरुने सत्यनारायणदास रख दिया। १ मास गुरुसम्पर्कमें रहनेके वाद दोनों गुरु-शिष्य वहाँसे चलकर अवधमें श्रीतपस्वीजीकी छावनीमें आये। गुरुआज्ञासे १६५३ से १६५७ तक वड़ी छावनी में रामायणी श्री रामस्वरूपदास जी तथा तुलसीचौरा पर रामायणी श्री सुखरामदास जी से श्री तुलसी मानस रामायण का अध्यन किया। इसके अलावे एकादश ग्रन्थावली का अध्यन कर जानकीघाट में श्री जानकीशरण जी मधुकर से रसमय श्रीसीतारामोपासना का वोध किया। वही मधुकर जी ने पुनः नाम वदलकर सीताशरण रखे। यह नाम लेखक को पसन्द हुआ, इसलिये सभी पुस्तकों में सीताशरण नाम लिखा है। १६५३ से ६० तक तपस्वी जी की छावनी और १६६०से गोलाघाट श्रीसद्गुरुसदनमें आये और १६६५तक रहे, वादमें सद्गुरुकुटी में रह रहे हैं।

इनका यथानाम तथागुण भी है। हरग्रन्थों के मंथनकर सारअंश इस पुस्तक में पिरोदिया है जो रामभक्तों के लिये अमृतोपान ही होगा।

सूर्यनारायण मिश्र व्यवस्थापक, संस्कृत–साकेत पत्र, अयोध्या

श्री श्री १०८ श्री भगीरथराम जी ब्रह्मचारी जी की

❀ शुभ सम्मति ❀

पावनपुरी श्री अयोध्याजी सद्गुरु कुटीर पापमोचनघाट पर निवास करते हुये, अपने आन्तरिक तप तथा मन्त्राराधन के अनुष्ठान से अभिषिक्त अन्तःकरण श्रीसीताशरण जी युगल रूपमाधुरी में सर्वथा तन्मयताप्राप्त करते हुये प्रभु कृपाकटाक्ष के संकेतानुसार "श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश" नामक ग्रन्थ की रचना करने में संलग्न हुये। श्रीरामतत्त्व के सम्बन्ध में वेद से लेकर उपनिषदों एवं पुराणों इतिहासों तथा विद्वानों साहित्यकारों के विविध प्रकाश उपलब्ध है। जो भली प्रकार अवलोकन करनीय है। इस ग्रन्थ में साधारण भाषा के जानकार सज्जनों को सुगमतापूर्वक श्रीसीताराम तत्त्व बोध कराने के लिये वर्तमान प्रकाशन प्रस्तुत करने का लेखक का सराहनीय प्रयास है। आशा है सुधीपाठक वृन्द श्री सीताराम जी के चरणों में प्रगाढ़ अनुराग की उपलब्धि केलिये इसग्रन्थ को आदरपूर्वक अपनायेंगे। इसग्रन्थ रत्न के समयोचित प्रयासके लिये हम हृदयसे लेखक को बधाई देतेहैं। और इसके प्रचार प्रसार के लिये शुभ कामना अर्पित करते हैं। शुभेच्छु—भगीरथराम "ब्रह्मचारी"

श्रीवशिष्ठकुण्ड, श्री अयोध्या जी दि० ५-२-७६ (श्रीसरस्वती जन्म पर्व)

श्री श्री १०८ म०—श्रीहरिरामशरण शास्त्री जी की शुभ सम्मति

श्री हनुमत सदन—श्री अयोध्या जी

'श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश' नामक ग्रन्थ का अवलोकन, समयानुसार हमने विहंगम दृष्टि से किया है। यह एक संकलित ग्रन्थ है। इसका संकलन संत श्री सीताशरण जी ने कठिन परिश्रम से किया है और इन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है। फलतः ग्रन्थ श्रीसीताराम युगलोपासकों के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआहै। ग्रन्थ के सभी विषय सुन्दर हैं, किन्तु षड्माधुरी ने इसे मधुमय बना दिया है, और युगल स्तवराज ने ग्रन्थ में गरिमा ला दी है। संग्रहकर्त्ता के स्वरचित फुटकर पद्य जो कि इसमें समाविष्ट हैं भावुक भक्तों के हृदयमें स्पदंन पैदा कर देत है। अस्तु हमें विश्वास है कि इसग्रन्थ का दिनानुदिन विकाश होता रहेगा और वैष्णव समाज इससे सदा उपकृत होता रहेगा।

अन्त में—रचयिता के प्रति कल्याण की कामना करते हुए करुणा वरुणालय श्री किशोरी जी से प्रार्थना है कि इन दोनों (ग्रन्थ और उसके रचयिता) को चिरायु प्रदान करें और समय-समय पर सेवा का सुअवसर दें॥ जय सीताराम॥

हरिरामशरण

❀ श्रीजानकी रमणो विजयते ❀

श्री श्री १०८ मं० श्री नृत्यगोपालदास जी महाराज की "शुभ–सम्मति"

❀ दो शब्द ❀

अनादिकाल से भवाटवी में भूला भटका जीवन सही दिशा प्राप्त नहीं कर पा रहा है। चेष्टा करने पर भी दुरत्यया माया स्वरूप कञ्चन कामिनी के व्यामोह में आबद्ध हो पुनः पुनः भ्रमित होता रहता है। "आचार्य मां विजानीयात्" अपार करुणावरुणालय श्री भगवान् स्वयं आचार्य रूपसे जीव को कृतार्थ कर मार्ग दर्शन कराते हुए कहते हैं—"लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि"। अक्षर अविनाशी सच्चिदानन्द घन परात्पर पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्री सीताराम जी जीव मात्रके ध्येय एवं गेय हैं।

प्रिया प्रियतम जिस प्रकार अभिन्न हैं—"गिरा अर्थ जल वीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न"। परन्तु नाम रूपसे लीला हेतु भिन्न रूपसे दृश्य होते हैं तद्वत् परात्पर तत्व भगवान् श्री सीताराम जी अपने नाम रूप–लीला एवं धाम रूपसे अभिन्न हैं। यथा—"रामस्य नामरूपञ्च लीलाधाम परात्परम्। एवच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम्॥ परन्तु साधकों की साधना एवं साध्य दृष्टि से भिन्न रूपेण ग्राह्य होते हैं।—"हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता" 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" श्रीभगवत्तत्व अद्वितीय है एवं मनसा वाचा अगोचर है। अनन्त महिमा एवं वैभव का प्रतिपादन जीव मात्र की सामार्थ्य से परे है फिर भी रसास्वादन हेतु महिमा गायी जाती है यथा "समुझि समुझि गुण ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ" हृदयमें प्रीति प्रतीति उत्पादनार्थ अनन्तके गुणाम्बुधि में अवगाहन किया जाता है।

सन्त श्री सीताशरण जी रस साधना में सदा निमग्न रहते हैं। प्रेमीजनों के प्रिय अनेक प्रकाशन प्रकाशित कर अनेक सद्ग्रन्थोंके लेखन एवं सम्पादन से सुर-भारती की सराहनीय सेवा की है। उसी परम्परा में सद्ग्रन्थ सार सर्वस्य "श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश" भी अनुपम कृति है इसमें विभिन्न मधुर–माधुरी, श्री नाम–रूप–लीला–धाम माधुरी, विनय माधुरी आदि के साथ संत–समाज, मानव जीवन, सत्संग सुधा, श्री जानकी स्तवराज, रामस्तवराज की भाषा टीकाकर अनेक रस वैचित्री से प्रिया–प्रियतम् प्रसाद प्राप्त प्रेमी जन धन्य एवं कृतकृत्य होंगे ऐसी आशा है श्री सद्गुरु चरणारविन्दानुरागी श्री सीताशरण जी के सत्प्रयास का रसग्राही पाठक समर्थन करेंगे एवं धन्य धन्य होंगे।

नृत्यगोपालदास

अनन्त श्री मणिरामदासजी महाराज की छावनी, श्रीअवधधाम—दि २६–२–७६

श्री श्री १०८ म० श्री हरिनामदास जी महाराज की

❊ शुभ-कामना ❊

श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश नामक पुस्तक का मैंने अवलोकन किया उससे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि "परोपकारायसतां विभूतयः" एवं "परउपकार वचन मन काया सन्त सहज स्वभाव खगराया" के अनुसार परम रसिक सन्त श्री सीताशरण जी ने अत्यन्त उत्कृष्ट भावुक हृदय से परम बौद्धिक कुशलतापूर्वक इस ग्रन्थरत्न के संग्रह में महान् परिश्रम किया है जिसमें—"रामस्य नामरूपञ्च लीलाधाम परात्परं, एतच्चतुष्टयं नित्यंसच्चिदानन्द विग्रहम्" इस नारद पञ्चरात्रोक्त सिद्धान्त के अनुसार जीवमात्र के परम प्राप्य "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" "आनन्दं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति" 'रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि, इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते" इत्यादि श्रुतिप्रतिपाद्य परमानन्द स्वरूप सच्चिदानन्द घन—

"गिरा अर्थ जलवीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न, बन्दौं सीताराम पद जिनहिं परमप्रिय खिन्न" के अनुसार अभिन्न स्वरूप करुणा वरुणालय अखिल हेय प्रत्यनीक वात्सल्यादि अनन्त कल्याण गुणगुण निलय भगवान् श्री सीताराम जी के साध्यसाधन स्वरूप नामरूप लीलाधाम चतुष्टय का एवं आचार्य परत्व इत्यादि का श्रुति स्मृति पुराण संहिता इत्यादि प्रमाणों से तथा सरल भाषामें स्वरचित स्वानुभूति पूर्ण कविता से निरूपण करके आस्तिक जगत्का महान् उपकार किया है, मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्री कृपारूपिणी श्री किशोरी जी की कृपासे इस ग्रन्थ रत्न को पढ़कर तथा सुनकर भावुक भक्तों को महान् सुख एवं ज्ञान की उपलब्धि होगी तथा अबोध अज्ञ प्राणियों को भगवतत्त्व का यथार्थ बोध प्राप्त होगा। अलमति विस्तरेण।

हरिनामदास वेदान्ती

श्रीजानकीघाट, श्री अयोध्या जी

श्री श्री १०८ पं० श्रीहर्याचार्यजी महाराज व्या० वेदान्त साहित्याचार्य न्यायशास्त्री की

❊ शुभ-सम्मति ❊

श्री सीताशरण जी के द्वारा सङ्गृहीत श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश नामक ग्रन्थ श्री सीताराम जी के उपासकों तथा प्रेमियों के लिये सर्वतोभावेन उपादेय है। इस ग्रन्थ में श्री सीताराम जी के नाम धाम, लीला रूप तथा इसकी प्राप्ति के मूल कारण गुरु महाराज की महामहिमा शालिनी माधुरी का सर्वातिशायी प्रतिपादन किया गया है। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सिद्धान्त का मधुकर वृत्त्या सञ्चय इस ग्रन्थ का

प्रतिपाद्य विषय है। हिन्दी संस्कृत के विविध स्तोत्रों से सजाया गया इसका कलेवर सोने में सुगन्धि के समावेश के समान परमाह्लाद का विषय हो गया है। स्वामी श्री-वैष्णवाचार्यजी के श्रोत सिद्धान्त ने इसमें प्राण शक्ति भर दी है। श्रीमधुकरियाजी के द्वारा अर्थपंचक शुक मुखास्वादित फल के सदृश माधुर्यातिशयाधान इस ग्रन्थ की उपादेयतामें समृद्धिकर सिद्धहै। इस ग्रन्थके प्रचार द्वारा सज्जनोंको लाभहो, और श्रीसीता-रामजीके चरणों में ग्रन्थ संग्रहकर्त्ता का अनुराग उत्तरोत्तर बढ़े यह हमारी आकांक्षा है।

हर्याचार्य--बोधायन आश्रम
श्रीजानकीघाट-श्रीअवधाम।

श्री श्री १०८ महान्त श्रीरामप्रतापदास जी महाराज की शुभ सम्मति

❀ शुभ कामना ❀

"श्रीसीताराम तत्व प्रकाश" नामक ग्रंथ यह भगवद् भक्तों के लिये परम उपयोगी तथा अत्यंत आवश्यकीय है। इस ग्रंथ में जितने भी विषय प्रतिपादन किये गये हैं, वे सभी विषय जन कल्याण हेतु तथा भक्ति वर्द्धक एवं सांसारिक बंधनों से रहित करने वाले हैं। श्रीसीतारामजी के नाम, रूप लीला धाम आदि के विषय में भगवद् पद पराग रस रसिक संत शिरोमणि श्रीसीताशरणजी ने अकथनीय परिश्रम किया है। आपने जो यह अद्वितीय कार्य किया है वह निष्काम दृष्टि से ही किया है। मैं आशा करता हूँ कि जगज्जननी श्रीमिथिलेश किशोरीजी की कृपा से महान जन-कल्याण होगा। तथा श्रीसीताशरणजी का परिश्रम सफल होगा।

अनन्त श्रीस्वामी रघुनाथदासजी महाराज
की बड़ी छावनी, श्रीअयोध्याजी
म० रामप्रतापदास शास्त्री
दि० ४-३-७६

❀ श्री श्री १०८ श्री श्रीकान्तशरणजी महाराज की शुभ सम्मति ❀

श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश ग्रन्थ को श्रीसीताशरणजी ने श्रीसद्गुरु कुटी स्थान में रहकर लेखन व प्रकाशन सम्पन्न किया है। प्रस्तुत ग्रंथ में भगवान् श्रीसीतारामजी के नाम, रूप, लीला, धाम, शरणागति, प्रपत्ति श्रीगुरु महिमा माधुरी, श्रीजानकी स्तवराज श्रीरामस्तवराज, मानवजीवन, सतसंग सुधा इत्यादि प्रसंग अच्छे हैं तथा इनके पढ़ने वालों को श्रीसीताराम तत्त्व का बोध और अनुराग प्राप्त होगा। मेरी शुभ कामना है कि इस ग्रन्थ रत्न से सज्जन लोग लाभ उठायेंगे।

श्रीकान्त शरण
दि०-२८-२-७६ ई०

श्री श्री १०८ श्रीस्वामी सीतारामशरणजी महाराज की

❀ शुभ सम्मति ❀

अखिलहेय प्रत्यनीक स्वाभाविक अनवधिक अतिशय असंख्येय दिव्यकल्याण गुणगणसागर श्रीजानकी वल्लभजी के नाम-रूप-लीला-धाम के अनन्य उपासक सन्त श्रीसीताशरणजी द्वारा सम्पादित "श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश" ग्रन्थ का अवलोकन कर महती प्रसन्नता हुई। यद्यपि अनादिकाल से ब्राह्मणात्मक वेद एवं तदुपबृंहणभूत इतिहास पुराणों द्वारा ही परतत्त्व का विवेचन होता आया है, किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में भक्ति साहित्य के प्रचार प्रसार की नितान्त आवश्यकता है।

विरक्त संत सद्गृस्थ भक्त एवं मनीषीगण इस सम्बन्ध में संगठित होकर प्रचार प्रसार करें तो यह कार्य सानन्द सम्पन्न हो सकता है अभी भी दुर्लभ रहस्यों से परिपूर्ण सन्त साहित्य विपुल मात्रा में अप्रकाशित हैं। श्रीमद्भागवत, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की संस्कृत टीकाओं का अनुवाद अभी तक प्रकाशित नहीं किये जा सके। संस्कृत में निबद्ध रहस्य ग्रन्थों का हिन्दी व्याख्या के साथ प्रकाशन होना अत्यन्त आवश्यक है।

रसिक सन्त श्रीसीताशरणजी ने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन द्वारा इस दिशा में सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। श्रीसीताराम तत्त्व प्रकाश, ग्रन्थ में अनेक विषयों का समावेश किया गया है अनेक सन्तों विद्वानों एवं लेखकों द्वारा लिखित लेखों का संग्रह कर इस पुस्तक को सर्वजनोपयोगी बनाने का सराहनीय प्रयत्न किया गया है। श्रीगुरु-महिमा-माधुरी, श्रीसीताराम नाम महिमा माधुरी आदि शीर्षकों से प्रतिपाद्य विषयों का सम्यक् विवेचन किया गया है। श्रीजानकी स्तवराज, श्रीरामस्तवराज आदि ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हैं। रामस्तवराज की भूमिका में नास्तिक आस्तिक दर्शनों का जो पं० श्रीहरिदासजी महाराज ने संक्षिप्त विवेचन किया है वह रामस्तवराज के प्रतिपाद्य विषयों से असम्बद्ध होने के कारण अधिक उपयुक्त नहीं है, साथ ही ग्रन्थ को बोझिल भी बना दिया है। उत्तम तो यह होता कि भाष्यकार स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज के संस्कृत भाष्य की प्रस्तावना के १० पृष्ठ से ३६ तक की हिन्दी व्याख्या करदी जाती तो उसीसे पाठकों को महान् लाभ होता। सम्पादक श्रीसीताशरणजी के साहित्य प्रचारकार्य सर्वथा श्लाघ्य है। श्रीसीतारामजी की कृपा से इस ग्रन्थ का भक्त समाज में समादर होगा ऐसी आशा है। इस ग्रन्थ के लेखक के प्रति मेरी हार्दिक शुभ कामना है।

सीतारामशरण

१-३-७६ श्रीलक्ष्मणकिला-श्रीअयोध्याजी।

* श्री श्री १०८ श्रीगणेशदासजी महाराज की शुभ सम्मति *

रामं विद्धि परं ब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं, भक्ताभीष्टप्रदायकम् ॥

अखिल ब्रह्माण्डनायक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीसीतारामजी के भावात्मक शुद्धान्तःकरण में दर्शन कराने हेतु विविध ग्रन्थों में ऋषि मुनि तथा विद्वानों द्वारा सविस्तार वर्णन मिलता है। संस्कृत ग्रन्थों में जितना अधिक विवेचन किया गया है आज अल्प बुद्धि वाले लोगों के लिये उनका भली प्रकार समझ पाना अशक्य सा हो गया है। ऐसी स्थिति में सतत् प्रयत्न करके तत्तद् ग्रन्थों के मुख्यांश का सङ्कलन करते हुये हिन्दी भाषा अनुवाद प्रस्तुत करके साधारण पढ़े लिखे श्रद्धालुजनोंको श्रीरामतत्त्व का बोध प्रस्तुत ग्रन्थ में कराया गया है। जिससे थोड़े ही समय में भावनाविभूषित सरल अन्तःकरण वाले सज्जन वृन्द यथेष्ट लाभ उठा सकेंगे।

इस ग्रन्थ रत्न "श्रीसीताराम तत्व प्रकाश" के लेखक श्रीसीताशरण जी ने जो उदारता दर्शाई है उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं और हम इस ग्रन्थ के सुचारु प्रचार प्रसार के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनायें अर्पित करते हैं।

गणेशदास
बसन्तिया पट्टी श्रीहनुमानगढ़ी
श्रीअयोध्याजी, (उ० प्र०)

दिनाँक २३-२-७६

मानस केशरी, पं० श्रीवाल्मीकिप्रसाद जी, एम०ए० एम०एड० रामायणी जी की

* शुभ सम्मति *

श्रीअवधाम के रस-मर्मज्ञ सन्त श्रद्धेय श्रीसीताशरणजी महाराज द्वारा सम्पादित श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश ग्रन्थ प्राप्त हुआ। ग्रन्थ को आदि से अन्त तक पढ़ा गया ग्रन्थ में श्रीरामनन्दीय वैष्णव दर्शन की युगलोपासना के आवश्यक साहित्य का वर्तमान सन्दर्भ में अत्यन्त ही समीचीन समावेश हुआ है। समग्र ग्रन्थ को श्रीसीतारामोपासनाका लघु 'एनसाइक्लोपीडिया' कहा जायतो अत्युक्ति न होगी। श्रीगुरुमहिमा माधुरी श्रीजानकीस्तवराज, की सान्वय हिन्दी टीका, नाम, रूप, लीला और धाम-माधुरी, सत्संगसुधा, सन्त समाज, अहिंसादि दैवी सम्पद् निरूपण, प्रभृति विविध विषयों का जितना सरल और शास्त्रीय निरूपण इस ग्रन्थ में सुलभ है, अन्यत्र दुर्लभ है। ग्रन्थ श्रीरामोपासकों के लिये उपादेय तो है ही रसिकोपासना के शोधार्थियों के निमित्त भी अत्यन्त उपादेय है। निसन्देह सन्त श्रीसीताशरणजी महाराज ने प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से सम्प्रदाय एवं साहित्यक-संसार दोनों का समवेत उपकार किया है। तदर्थ श्रीमहाराजजी भूरि भूरि साधुवाद के पात्र हैं।

— मानस केशरी, पं० वाल्मीकि प्रसाद मिश्र,
श्रीनिधिकुञ्ज, शहडोल (म० प्र०)
बसन्त पञ्चमी १९७६ ई०

श्री श्री १०८ पं० श्री रामकुमारदासजी महाराज मानस तत्त्वान्वेषी, वेदान्त भूषणजी की शुभ सम्मति

आज विज्ञान ने अनेक सम्मान्य वक्ता विद्वानों के लिये पुस्तक लेखन कार्य सुलभ कर दिया है। अर्थात् जिनका प्रवचन टेप होता जाता है, उस टेप को बार बार सुनकर लोग प्रेस कापी तैयार कर देते हैं। ऐसे वक्ताओं की प्रतिमास दो दो तीन तीन बड़ी पुस्तकें तैयार होती रहती हैं। मौलिक उपन्यास कहानियों की पुस्तकें कर्ता की कल्पना प्रतिभा पर तैयार हुआ करती हैं। उन्हें केवल लिखने मात्र का कष्ट करना पड़ता है, शास्त्रों से प्रमाण संग्रह करने का परिश्रम एवं दायित्व नहीं उठाना पड़ता है। परन्तु जो शास्त्रों से प्रमाण संग्रह करके हाथ से प्रामाणिक ग्रन्थ लिखते हैं उनके परिश्रम को उनके समान धर्मी ही जान सकते हैं। इसी तरह मूल पुस्तक का ठीक ठीक पद्यानुवाद करना भी कठिनतर कार्य है॥ २॥ इसी तरह अनेक विद्वानों एवं भावुकों के लेखों का स्वप्रतिपादित विषयानुसार संग्रह करके सम्पादन करना भी अत्यन्त परिश्रम का कार्य है॥ ३॥

इन तीनों तरह की कठिनाइयों का कुछ कुछ अनुभव मुझे हैं। इससे अनुमान करता हूँ कि जिस तरह प्रयोग निपुण मालाकार अनेक क्यारियों में से उत्तमोत्तम पावन पुष्पों का चयन करके सुन्दर गजरा तैयार करता है उसी तरह श्रीसीताशरण जी ने महान परिश्रम से अनेक विद्वानों के लेख प्रसूनों को चुन-चुनकर श्रीसीताराम तत्व प्रकाश रूप सुन्दर वनमाला तैयार कियाहै जिसे "गिरा अर्थ जल बीचि सम" अभिन्न युगल सरकार तो प्रसन्नता पूर्वक धारण करेंगे ही उसे अवलोकन करने वाले आस्तिक सज्जन भी अपने "लोक लाहु परलोक निबाहू" का मार्ग प्रशस्त करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

पं० रामकुमार दास
२-३-१९७६

❋ विद्वद्वर पं० श्रीरुद्रप्रसाद अवस्थीजी की शुभसम्मति ❋

महात्मा श्रीसीताशरणजी की कृति श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश नाम का ग्रन्थ रत्न हमें देखने को मिला, मैंने ग्रन्थ को भली भाँति अवलोकन किया। कुछ कुछ अंशों को विशेष रूप से अध्ययन किया, प्रस्तुत ग्रंथ लोक समाज, धर्म प्रकाशक, तथा सनातन धर्म का पोशक प्रतीत हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जनकल्याण अवश्य होगा हमें यह विश्वास है, अतः हमारी शुभ कामनायें इस ग्रन्थ के साथ हैं, तथा श्रीअंजना नन्दनजी से प्रार्थना है कि यह ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित होकर समाज के समक्ष आकर उसे भी प्रकाशित करे।

सम्मतिदाता :-

रुद्रप्रसाद अवस्थी (अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य)
विश्वविद्यालय लखनऊ, सम्मानित सम्पूर्णानन्द, वि० वि० वाराणसी

GOOD-WISHES.........!

I studied this compilation compiled by the devotee Shri Sita Sharanji Maharaj. Actually, his attempt is praiseworthy. A Few new chapters as, Shri Guru Mahima Madhuri, Shri Sita Rama Nama Mahima Madhuri,Shri Rama Rupa Madhuri, Shri Janaki Stavaraj, Shri Ramastavaraj, Vinay Madhuri, Shri Sita Rama Lila Madhuri, Shri Dhama Madhuri, Charpata Manjari, Prashnotari, Manava Jiwan, Ahimsa Nirupana, Santa Samaj etc. have been included to make the book even more useful for the devotees.

I wish to express my grateful thanks to Shri Sita Sharan ji Maharaj who has tried his best to make it clear so many complicated questions in this compiled humble book.

LAXMAN PANDEY, 'Shastri' (M.A.)
Sad Guru Niwas,
Golaghat - Ayodhya.

पं० श्रीराजनारायण मिश्र जी की शुभ सम्मति

प्रेषक :- राजनारायण मिश्र, एम०ए० (अंग्रेजी) एल०एल०बी०, पी०एच०ई०डी०,
रीवां-(म० प्र०)

सम्मति पत्र :-- आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थ श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश का आद्योपान्त अध्ययन किया। इस ग्रंथ में प्रतिपादित समस्त विषय एक से एक बढ़कर हैं। परन्तु श्रीगुरु महिमा माधुरी एवं नाम, रूप, लीला, धाम की माधुरी ने इस पाषान हृदय को भी रसप्लावित कर दिया। श्रीजानकीस्तवराज की टीका तथा उसका पद्यानुवाद एवं अन्त में दी गई विशेष टिप्पणी अत्यन्त ही विद्वता पूर्ण एवं भाव समन्वित है। इस सम्पूर्ण संकलन को एक साथ प्रस्तुत करने के लिये आपको जितने भी साधुवाद समर्पित किये जायँ; थोड़े ही हैं। मैं आपकी समस्त भावनायें ग्रंथ के प्रकाशन के लिये आपको समर्पित करता हूँ। भवदीय :- आर० यन० मिश्र, १८।२।७६

पं० श्रीरूपनारायण मिश्र जी की शुभ सम्मति

* शुभाशंसनम् *

श्रीसीतारातत्त्वस्य प्रकाशेऽस्मिन सुपुस्तके। श्रीसीताशरण: प्राज्ञो गगर्च्या भृतसागर: ॥१॥ गुरुं विना न पश्यन्ति सत्यं मार्गं बुधा अपि। तस्मात् प्राग गुरर्ममहिमा वर्णितोऽत्र महात्मना ॥ २ ॥

पं० श्रीरूपनारायणजी मिश्र 'प्राचाय' साहित्यव्याकरणा-आचार्य
श्री नि०वो०रा०सं० महा वि० उत्तर तोताद्रिमठ, श्रीअयोध्याजी
दि० २६-२ ७६ ई०

श्री १०८ श्री पं० श्रीअखिलेश्वरदासजी ज्योतिष शास्त्री वेदान्त साहित्याचार्यजी की

* शुभ सम्मति *

श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश नामक पुस्तक का मैंने आरम्भ देखा गुरु-महिमा प्रकरण को देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ बड़े परिश्रम से श्रीसीताशरणजी ने प्रामाणिक ऋषि महर्षि प्रणीत शास्त्रों, सन्तों के बचनों से गुरुमहिमा का प्रतिपादन सरल हिन्दी में किया है तथा अग्रिम प्रकरणों में अर्थपंचक, तत्वत्रय आदि विषयों का विशद रूप से शास्त्रान्वेषण से किया है आपका परिश्रम प्रशंसनीय है इस पुस्तक से वैष्णवों को भक्ति में पूर्ण सहायता मिलेगी और परोपकारी होगा इति शुभम।

१--३--७६ पं० अखिलेश्वर दास

* रामायणी श्रीसुरेन्द्रकुमार जी की शुभ सम्मति *

गुरुमहिमा माधुरी पूर्णसद्ग्रन्थ मनोहर। श्रीसीतावर विनयमाधुरी परिपूरितवर ॥
नाम, रूप, लीला, सुधाम की नवल माधुरी। मानवता उत्थान दिव्य स्तोत्र चातुरी ॥
सभीविषय शास्त्रोक्तरच,कियोपरम परमार्थयह। धन्य-२ सीताशरण सबजग बारम्बारकह॥

—सुरेन्द्रकुमार रामायणी नेहनिकुंज, अजयगढ़ [म०प्र०] १७।२।७६ ई०

* प्रकाशकीय विनम्र–निवेदन *

अहैतुकी करुणावरुणायलय अखिलहेयप्रत्यनीक क्षमा दया औदार्य वात्सल्यादि अनन्त कल्याणगुणगणनिलय भगवान् श्रीसीतारामजीकी कृपासे पूजनीय सन्तसमाज एवं भगवतपादारविन्द–मकरन्द रसास्वादन परायण भगवद्भक्तों के समक्ष श्रीसीतारामतत्त्व-प्रकाश ग्रन्थ प्रस्तुत है। इसका विषय पूज्य सन्तों और भगवद्भक्तोंके द्वारा प्रकाशित कई ग्रन्थों से संग्रह किया गयाहै। यद्यपि संग्रहकर्ता अबोध होनेके कारण इतने विषयों को संग्रह करके यथोचित स्थानपर नियुक्त करने में सर्वथा असमर्थ था। तथापि श्रीगुरुदेव, पूज्य सन्तों एवं प्रभुकृपाने अपनी सामर्थ्य से यहकार्य सम्पन्न करवा लिया है। लेखक तो यन्त्रवत् यन्त्री की प्रेरणानुसार घूमतारहा, कार्य उत्प्रेरक की प्रेरणा द्वारा ही सम्पन्न हुआ।

प्रस्तुत ग्रन्थमें यदि अच्छी नामकी कोई बात है, तो वह श्रीगुरुदेव पूज्य सन्तों एवं प्रभुकी कृपा ही है। और विषयोंमें विषयान्तर, क्रमान्तर तथा प्रकाशन सम्बन्धी अशुद्धियाँ लेखक की अबोधअवस्था का ही परिणाम है।

ग्रन्थका प्रधान विषय श्रीगुरुमहिमा माधुरी, श्रीसीतारामनाम माधुरी, श्रीसीताराम रूपमाधुरी. श्रीजानकी स्तवराज, श्रीराम स्तवराज, श्रौतसिद्धान्त चालीसा, विनय माधुरी श्रीसीताराम लीलामाधुरी, श्रीधाम माधुरी, चार नमस्कार मालायें, स्तुति, श्रीसीताकृपा कटाक्ष, श्रीभरताग्रजाष्टक, चर्पट मंजरी, प्रश्नोत्तरी, मानव जीवन, सत्संग सुधा, अहिंसा निरूपण, सन्त समाज भक्त नामावली स्मरण आदि हैं। ये सब विषय जिन महान्पुरुषों की पुस्तकों से संग्रह किये गये हैं उनका संक्षित परिचय क्रमशः इस प्रकार है,—

श्रीगुरुमहिमा माधुरी में दीक्षा की आवश्यकता नामक शीर्षक, परमश्रध्येय पं० श्रीअवधकिशोरदास जी महाराज श्रीरामानन्द आश्रम श्री जनकपुरधाम वालों की दीक्षा पद्धति नामक पुस्तक के पृ० २ के भावानुसार प्रश्नोत्तर रूपमें दिया गया है॥ यह विषय प्रस्तुत ग्रन्थमें पृ० २४ से ३३ तक है। पृ० ३३ से ४० तक श्रीगुरु चरन कमलवा बन्दौं सोइ से पृ० ४० तक, मानस तत्त्वान्वेषी पं० श्री रामकुमार दासजी महाराज रामायणी श्री मणिपर्वत वालों का लेख, श्रीलक्ष्मणकिला से प्रकाशित श्री अवधसंदेश पत्रिका के वर्ष १३ के श्रीगुरुमहिमा नामक विशेषांक के पृ० ४१ से पृ० ४६ तक, गीताप्रेस गोरखपुर के कर्मचारियों से निवेदन लेखक का भाव है। यहाँ का कुछ विषय भूलसे छूट गया था जो पृ० ५० में सभी

को ढोंगी पाखण्डी कहती हैं से लेकर पृ० ५४ तक हैं। पृ० ४० का शेष विषय पृ० ५५ से ५८ तक है। पृ० ५६ से ६८ तक पं० श्री रामकुमारदास जी महाराज रामायणी मणिपर्वत वालों द्वारा नारी दीक्षा नामक पुस्तक के पृ० ४ श्लोक नं० २ से पृ० १६ में श्लोक नं० ११ तक यत्र तत्र से लिया गया है। पृ० ६६ में श्रीगुरुअर्चन पद्धति, इस पुतस्क को श्री जानकी घाटस्थ जयपुर मन्दिर के महान्त पूज्य श्रीराजकिशोरीवरशरणजी ने श्रीगुरुअर्चा पद्धतिके नामसे प्रकाशित करवाईथी, प्रकाशनकार्य में कार्य कर्त्ताओं की असावधानी से कहीं कहीं कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं, उसी पुस्तक को हमारे परमश्रध्येय पं० श्री अभिलाष प्रसाद जी त्रिपाठी (वड़ेरामजी) ने यथा शक्ति संशोधन एवं हिन्दी भाषा में सरल अनुवाद करके सद्गुरु प्रेमियों के उपयोगी वनाया है। वही पृ० ६६ से ७४ तक श्रीगुरुअर्चन पद्धति है। पृ० ७५ में अर्थपंचक है, इसको लेखक के परमपूज्य श्रीगुरुदेव अनन्त श्री जानकीशरणजी महाराज श्रीचारुशीला मन्दिर श्रीचारुशीलावाग श्रीजानकीघाट वालों ने लिखा है, यह प्रसंग पृ० ७५ से ८४ तक है। पृ० ८४ से १३७ पृ० तक पंच संस्कार गतिवोध नामक पुस्तक जो चित्रकूटी परमहंस श्रीजानकीवल्लभदास जी महाराज की लिखी और प्रकाशित करवाई हुई थी, दीक्षापद्धति पं० अवधकिशोर दास जी महाराज श्रीरामानन्द आश्रम श्रीजनकपुर धाम वालों द्वारा प्रकाशित, तथा प्रपत्ति रहस्य, यह पुस्तक मानस भाष्यकार सम्पूर्ण श्रीतुलसी साहित्य के व्याख्याता श्री श्री १०८ श्री पं० श्रीकान्तशरण जी महाराज श्री सद्गुरु कुटी गोलाघाट वालों के द्वारा प्रकाशित, पुस्तकों से लिखा गया है, जो विषय जिस पुस्तक से लिया गया है, वहाँ पर उस पुस्तक का पृ नं० भी दिया गया है। भूल से कहीं छट भी गया होगा, उसको महापुरुष क्षमा करेंगे क्यों कि भूल सभी से हो जाती है, फिर यह लेखक तो अवोध ही है।

पृ० १३७ से पृ० १४८ तक भगवतशरणागतिकी महिमा और शास्त्रीयप्रमाण। पृ० १४८ से पृ० १५५ तक श्रीगुरु महिमा। १५५ पृ० से १६३ पृ० स्त्री और गुरु श्री अवधसंदेश पत्रिका के वर्ष १३ के गुरुमहिमा विशेषांक पृ० ११७ से १२३ तक के अनुसार लिखा गया है॥ पुनः पृ० ६८ का प्रसंग भूलसे छूटा हुआ पृ० १६५ से पृ० १६७ तक मानस में नारी दीक्षा नामक पुस्तक के पृ० १६ से पृ० २१ तकके अनुसार लिखाहै। पृ० १६७ से १७५ तक श्रीसीतारामनाम महिमा, अनन्तश्री स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज द्वारा संग्रह श्रीसीतारामनाम प्रताप प्रकाश पुस्तक के पृ० ७७ से आगे लिये हैं। १७६ पृ० में ७ श्लोक "श्रीरामनाम महिमा" स्वामी

श्री रामनारायणदास जी महाराज शास्त्री द्वारा प्रकाशित के पृ० ६, ११, १४ २५ से लिये हैं। पृ० १८१ से श्रीसीताराम रूपमाधुरी पृ० २०० तक श्री सुरेन्द्रकुमारजी रामायणी, नेहनिकुंज, स्टेट अजयगढ़ म० प्र० वालों द्वारा लिखित है। पृ० २०१ से २३२ पृ० श्रीजानकीस्तवराज का सान्वय हिन्दी अनुवाद एवं पद्यानुवाद तथा विशेष सहित "मानस केशरी" पं० श्रीवाल्मीकि प्र० मिश्र एम० ए० एम० एड० रिसर्च-स्कालर रीवां विश्वविद्यालय, श्रीनिधिनिकुंज, विराट-नगर-शहडोल म० प्र० वालों द्वारा लिखी हुई है। पृ० २३३ से ३३४ तक श्रीरामस्तवराज की विद्वत्तापूर्ण तात्पर्य बोधिका हिन्दीटीका विद्वत्वर पं० श्री हर्याचार्य जी महाराज श्री बोधायन आश्रम श्री जानकीघाट श्रीअवधधाम वालों कृत है। पृ० ३३५ से ३४२ तक श्रौतसिद्धान्तचालीसा पं० सम्राट स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य जी महाराज कृत है। इस चालीसा में महाराज श्री ने श्रीरामानन्द वेदान्त का सार सिद्धान्त प्रतिपादन किया है। पृ० ३४२ में श्री हनुमान मधुर चालीसा लेखक का जोड़ तोड़ किया हुआ है। पृ० ३४३ से ३५६तक विनयमाधुरी, प्रातः स्मरणीय पूज्यचरण गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज, एवं श्रीसदगुरु भगवान, श्री अवधकिशोरदास जी (भैया जी) शहडोलवाले, और कुछ पद लेखक का बालविनोद है। पृ० ३५६ से ४४० तक श्रीसीताराम लीलामाधुरी कई महापुरुषों एवं भगवद्भक्तों के हृदय का उद्गार तथा कुछ लेखक की अटपट भाषा है। पृ० ४४१ से ४६२ तक श्रीधाम माधुरी, बृहद्ब्रह्म संहिता, श्री मद्वाल्मीकीयरामायण श्रीराम चरितमानस, ध्यान मंजरी इत्यादि ग्रन्थों से कई विद्वानों द्वारा संग्रहीत हैं। लेखकों का नाम व पता प्रसंग में लिखा गया है। क्रमशः पृ० ४६३ से ४६६ तक श्रीसीतानमस्कारमाला, श्रीरामनमस्कारमाला, श्रीहनुमन्नमस्कारमाला, श्रीरामानन्द नमस्कारमाला, हैं। चारों नमस्कारमालायें पं० सम्राट स्वामी श्री वैष्णवाचार्य जी महाराज अहमदाबाद वालों कृत हैं।। पृ० ४६७ से ५०० तक श्री वैष्णव सम्प्रदाय की स्तुति है। कुछ श्लोक भूलसे वहाँपर छूट गये थे, वह आगे लिखे जायेंगे।

पृ० ५० से ५४ तक श्रीसीताकृपाकटाक्ष स्तोत्र है, इसी स्तोत्र को ब्रजभक्तों ने श्रीराधाकृपाकटाक्ष स्तोत्रके नाम से श्रीसीता शब्द के स्थान पर श्रीराधानाम तथा अन्य लीलापात्रों का नाम परिवर्त करके प्रकाशित किया है। सुबोध पाठक स्वयमेव समझ लेंगे कि स्तोत्र के शब्दों से यह स्तोत्र श्रीसीताजी के लिये लेखक ने लिखा है, अथवा श्रीराधा जी के लिये।। यद्यपि मैं ही क्या सभी सुधीजन यह जानते हैं कि भगवत्तत्वमें विभाजन नहीं है, वस्तुतः एकही परमतत्त्व "उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो

रूपकल्पना" के सिद्धान्त से भक्तों के भावनानुसार अनेक रूपोंमें प्रत्यक्ष होता है। किन्तु ध्यानरहे ! ये बात व्यापकत्त्व में ही निहित है, लीलाकाल में नहीं। भगवान् जिससमय जो लीला करते हैं, उससमय सारी चेष्टायें तदनुसार ही करतेहैं। अस्तु इस स्तोत्र के प्रथम श्लोक के 'नृपेन्द्रसूनु संगते" तृतीय श्लोक के"अवधेशभूपनन्दने" एकादश श्लोक के "प्रमोदकाननेश्वरी" द्वादश श्लोक के "नृपेन्द्रसूनु मन्दिरप्रवेशनम्" अष्टादश श्लोक के "रघूत्तमः" शब्द पर पाठक विचार करें कि ये शब्द श्रीअवध की उपासनासे सम्बन्धित हैं, अथवा व्रज की उपासना के प्रतिपादक हैं। यदियह कहाजाये कि श्री सीताजी एवं श्री राधाजी दोनों एकतत्त्व हैं, तो फिर नाम वदलने की आवश्यकता ही क्या है ? उपासकों को चाहिये कि जो वस्तु जैसी हो, उससे स्वयं रसानुभूति करलें, किन्तु उस वस्तु का स्वरूप विकृत न करें। पृ० ५०४ से ५०५ तक श्रीभरताग्रजाष्टक श्रीभरत-दासजी महाराज कृत है, यह स्तोत्र श्री जानकीदासजी महाराज जयपुर वालों द्वारा प्रकाशित श्रीवैष्णव स्तोत्रसंग्रह से लिया है। पृ० ५०५ से ५०८ तक ज० गु० श्रीस्वामी आदि शंकराचार्य कृत चर्पट मंजरी पृ० ५०८ से ५१६ तक प्रश्नोत्तरी भी श्रीशंकरा-चार्य कृत है। पृ० ५१६ से ५४३ तक मानवजीवन है, इसका विषय श्री कवीर मतावलम्वी सन्त श्री अभिलाषदास जी की "आप किधर जा रहे हैं" और 'जीवन क्या है" इन दो पुस्तकों के आधार से लिखा गया है। आवश्यकतानुसार कहींकहीं परिवर्धन एवं परिवर्तन किया गयाहै। पृ०५४३से५४५ तक सत्संगसुधा लेखकका विचार है। पृ० ५४६ से ५४९ तक अहिंसा निरूपण कुछ लेखक का विचार शेष प्राचीन भारत में गोमांस एक समीक्षा नामक पुस्तक मोतीलाल जालान द्वारा प्रकाशित है उससे लिया गया है। पृ० ५४९ से ५५० तक सन्त समाज लेखक का विचार। पृ० ५५१ में श्रीमुखवचन ५५२ में लेखक का निवेदन तथा प्रभु प्रसाद, ग्रन्थ सम्पूर्ण हो गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें विद्वानोंका लेख जिस किसी पुस्तकसे गिया लया है उसे यथा-वकाश सरलभाषा में प्रकाशन करने का प्रयत्न लेखक ने किया है। यत्र तत्र कुछ शब्दों को ब्रेकट (कोष्टक) में सरल करके लिख दिया है। क्लिष्ट भाषामें अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं ही, किन्तु कमपढ़े लिखे व्यक्तियों को उन महान् विद्वतापूर्ण ग्रन्थों से लाभ नहीं हो पाता है। अस्तु इस ग्रन्थ में लेखक ने विशेष ध्यान देकर सरल शब्दों का ही अधिक प्रयोग किया है। कहीं कहीं भूल से कुछ शब्द भले ही क्लिष्ट हो गये हों। परन्तु अपनी ओर से सरल शब्द ही लिखे गये हैं। प्रभु कृपासे भलेही विद्वान् भी इस ग्रन्थ द्वारा रसास्वादन करें किन्तु लेखक का विचार तो यही रहा है

कि इस ग्रन्थसे कमशिक्षा प्राप्त भगवत् प्रेमी अधिक लाभ उठायें। प्रस्तुत ग्रन्थ के संग्रह करने में तथा प्रकाशन करने में जिन सन्तों और भगवत प्रेमियों ने सहयोग दिया, वे सभी प्रभु के प्रिय कृपा पात्र हैं, अस्तु उनका स्मरण करना प्रभ कृपा का प्रतीक है। ग्रन्थ में विषय कई पुस्तकों से दिया गया है। वह पुस्तकें पं० सम्राट स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी महाराज, पं० राज सार्वभौम सारस्वत स्वामी श्रीमद्भगवदाचार्यजी महाराज, श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराज अहमदाबाद और पं० श्रीअवध–किशोरदासजी महाराज श्रीजनकपुर धाम परम सन्त श्रीरामटहलदासजी महाराज, श्री गणेशदासजी महाराज श्रीजनकदुलारीशरणजी रसिक बाबा श्रीचित्रकट धाम और श्री अवध में श्री सद्गुरुदेव जी, म० श्री हरिनामदास जी वेदान्ती श्रीजानकीघाट, अनन्त श्रीस्वामी मणिरामदास जी महाराज की छावनी के वर्तमान श्रीमहन्त जी महाराज, मानसभाष्यकार पं० श्री श्रीकान्तशरणजी महाराज, श्रध्येय स्वामीश्रीसीतारामशरणजी महाराज श्री लक्ष्मण किलाधीश जी, श्री चन्द्रकलाशरण जी महाराज श्री भक्तमाली जी गोलाघाट, मधुकरिया श्री किशोरीशरण जी, श्री वैदेहीवल्लभशरण जी महाराज, श्री वैदेहीशरण जी महाराज, श्री रामअभिलाषशरण जी महाराज श्री सद्गुरुकुटी गोलाघाट म० श्री रामसूरतशरणजी महाराज सद्गुरुसदन गोलाघाट, पं० श्रीछोटेलाल जी, भैया श्री अवधकिशोरदास जी, श्री मैथिलीरमणदास जी, श्री सुरेन्द्रकुमार जी, श्री हरिगोविन्ददास जी द्विवेदी, श्री चक्रपाणि जी त्रिपाठी, श्री रामउजागर जी चतुर्वेदी और म० श्री साकेतविहारीदास जी महाराज श्री मिथिलाविहारीकुञ्ज पो० मु० खजुहा जि० रीवां [म० प्र०] पं० श्री अलखनारायण जी रामायणी दक्षिणीचक स्टेशन अठमलगोला जि०पटना विहार, पं०श्रीशत्रुहनलालजीत्रिवेदी, राजपालसिंह पो० मु०मदनापुर, श्रीजनकनन्दिनीशरणजी ग्रा० प्रतापपुर, श्रीकिशोरीशरणजी ग्रा० लश्करपुर, श्रीमिथिलेशनन्दिनीशरण जी, श्री सियादुलारीशरण जी, मास्टर जयचन्द्रसिंह ग्रा० फीरोजपुर डूंड़ा पो० मदनापुर, मास्टर रामपालसिंह स० अ० वरुआ, परमश्रध्येय संत श्री जगदीशराम जी जोधपुर, श्री मैथिली सहचरीजी, श्रीसीतारामशरण जी (खींवराज भाटी) श्री रामशरण जी, श्री मैथिली सहचरी जी की माता जी, श्री सियारामदुलारी जी जोधापुर, श्रीरघुवरशरणजी सद्गुरुकुटी गोलाघाट

उपर्युक्त सन्तों एवं प्रभु प्रेमियों ने अपनी शक्ति सामर्थ्य भर विद्या, बुद्धि, ग्रन्थ, तथा अर्थ का सहयोग दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ का श्रेय इनसभी सन्तों और प्रभु प्रेमियों को है। मैं तो केवल कठपुतली सदृश्य सूत्रधर के संकेतपर नृत्य करता रहा। अस्तु प्रभु से हमारी प्रार्थना है कि वह ग्रन्थ के सहयोगियों पर सर्वदा अपनी कृपा

दृष्टि की वृष्टि करते रहें। पूज्य सन्तों एवं प्रिय भक्तोंको विदित हो कि प्रस्तुत ग्रन्थ ५८० पृ० में अभी पूर्वार्ध प्रकाशित हुआ है, और इसका उपनिषद् खण्ड द्वितीय भाग उत्तरार्ध अभी प्रकाशित होना है। अस्तु उसमें भी आप सब अपना ही कार्य जानकर सहयोग प्रदान करेंगे।

प्रभु विधानसे सात वर्ष की अवस्था में ही मेरे पार्थिव शरीर के पिताजी का देहावसान हो गया था, आठवीं वर्ष में विद्या पढ़ना आरम्भ करके दशवर्ष तक शिक्षा प्राप्तकर १८ वर्ष की अवस्था में पढ़ना छोड़ा, दो वर्ष घर पर रहकर बीसवीं वर्ष में श्री किशोरी जी की कृपासे सद्गुरु के दर्शन हुये। जि० पीलीभीत स्टेशन पूरनपुर के पास ग्राम अमरैया मढ़ीपर रहनेवाले अनन्त श्री लालबाबा फलाहारी जी महाराज ने श्री गुरुपूर्णमासी मंगलवार सन् १९५३ में पंच संस्कार किया, श्री सीताराम जी का मन्त्र प्रदान किया। अपने साथ श्री अवध में अपने गुरुद्वारा अनन्त श्री तपस्वी जी महाराज की छावनी में रखकर श्रीरामचरित मानस अध्यन करने की आज्ञा दी। १९५७ तक मैंने श्रीरामचरित मानस एवं एकादश ग्रन्थ का अध्यन किया। १९५७में कार्तिक पूर्णिमा मंगलवार को अनन्त श्री जानकीशरण जी महाराज (मधुकर) जी से माधुर्य रसोपासना का बोध प्राप्त किया, १९६० में श्री सद्गुरु सदन गोलाघाट में आकर रहा, बीच में कुछ समय श्रीराममहल कटरा में और श्यामासदन श्रीरामघाट माझा में भी रहा १९६५ से श्री सद्गुरुकुटी गोलाघाट में रहता हूँ। अनेक सन्तों भगवतभक्तों से प्राप्त पुस्तकों का संग्रह कर मैंने यहीं रहकर श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश पुस्तक का लेखन व प्रकाशन किया। स्थान की ओर से मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता एवं आवश्यकतानुसार सहयोग मिलता रहा है। महाराज श्री का तो वात्सल्य भली भाँति रहा और है ही, साथही उत्तराधिकारी श्री रामअभिलाषशरण जी का विशेषसौहार्द रहता है। स्थान के अन्य भी सभी संत मेरे ऊपर कृपा रखते हैं। मेरी ही असा-वधानी के कारण बहुत सी अशुद्धियाँ छूट गई हैं। अस्तु विद्वानों भगवतभक्तों और पूज्य सन्तों से विनम्र प्रार्थना है कि आप लोग सुधारकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करलें। छपाई का ढंग या अशुद्धियों पर दृष्टि न डालकर प्रतिपाद्य विषयों पर भाव का अन्वेषण करने पर ही यत्किंचित रस मिलना संभव है। तर्क या शंका करने पर कुछ भी प्राप्त नहीं होता है।

प्रमोदवन श्रीजानकीनिवास स्थान के वर्तमान श्री महान्त जी के शिष्य श्री रामदास जी महाराज हमारे परम प्रिय सन्त हैं। इनने प्रस्तुत पुस्तकके प्रकाशनकार्य में अकथ परिश्रम किया है। अस्तु श्री किशोरी जी से मंगल कामना है कि वह इनको अपने श्रीचरण कमलों का पावन प्रेम प्रदान करें।

* श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश ग्रन्थ की विषय अनुक्रमणिका *

मधुर मधुर गीतं रामचरितामृतं यो, व्रत परमपुनीतं यस्य विमला सुकीति ।
जयति तुलसिदासो काव्य–कुसुमाकरस्य, हरियश–रस रसिकः–कोकिलः मत्तभृङ्गः ॥१॥
श्रीमत्तुलसीदासाय रामभक्ताय साधवे । सीता रामपदाम्भोज भ्रमराय नमो नमः ॥२॥
सर्व श्रुतिधरं विज्ञं नाना भाषा विशारदम् । दिव्य प्रवन्ध कर्तारं हुलसी नन्द नं नमः ॥३॥
रामचन्द्र कथा सिन्धुन् मथित्वा तुलसी कविः । दर्शयन् परमं तत्त्वं चकार मानसामृतम्
नानापुराण निगमागम् क्षीर–सिन्धो, निर्मथ्य देव नरदानव वन्द्य शम्भुः । श्रीरामचन्द्र
चरितामृतपूर्ण चन्द्रं, निष्काशितो विजयते सहि मानसेन्दुः ॥५॥

वेद इक्षुदण्ड रामयश काढ़योविधि, वाल्मीकिपाग कीन्हें शङ्कर महानहै । वेद व्यास वरफी जमाई सु उमंग भरे, कालिदास कलादन्द कीन्हें करिकान है । सिंह ली "कुमार" दास कीन्हीं है मलाई स्वच्छ, क्षेमेन्द्र श्रीर पाग कीन्हें करि ध्यानहै । तुलसी गोसाईं निज कविता कटपेरिन में षटरस भोगधरे वहु परिमान है ॥ छाई जवै जवानन की रीति सुभारती नीतिगई घुलसी । पाप परायण में नरनारि न भावत भक्ति जो वेदलसी ॥ घोर शृंगारमें डूविगई मति मूढ कविन्द्रन की झुलसी । काव्य कलानयभक्ति उधारको विप्र "कुमार" भये तुलसी ॥ मानसरामचरित्रके भीतर भूरि गुणावलि है शुचि सीकी । वेदन को शुचि अर्थ अनूपम मोहति दिव्य कथा सिय पीकी ॥ सार "कुमार" धरयो सव सारमन काव्य पुराणहुँ को अति नीकी । गागर में भरयो सागर साँच सों लागै लखि कविता तुलसी की ॥ कविता तुलसीकृत सोहति है वसुधा में अनूप लहै छविता । छविताकी कहै कवि कैसे कोउ सियराम सुप्रेमहिं की सरिता ॥ सरिताकी नहीं तिहुंलोकनमें अवलोकत दे भवधार विताकी । रविता उपमा में "कुमार" नहीं दिन रैन जगै तुलसी कविता ॥ जाके पढ़े सव पाप नसै सियराम स्वरूप हिये झलकाहीं । जाके सुने मति निर्मल होति वढ़ै रुचि रामपदाम्बुजमाहीं ॥ जाके गुने गुन राम सिया कर भाषत भाव "कुमार" सदा हीं । सो शुचि मानस राम चरित्र पवित्र विचित्र नमो मनमाहीं ॥ जाको सदा सव शब्द सुमन्त्रहै जो नित राम चरित्रहिं भाषै । जो सिय–राम स्वरूप अनूप हिये धरिनाम सुधारस चाषै जाकी कृती लखि विज्ञ "कुमार" न दूसर ग्रन्थ हिये अभिलाषै । सो तुलसी तुलसी सम पावन मोहि पदाम्बुज पासहिं राखै ॥ श्री तुलसी तुलसी सम पावन पाव न कोउ समता तुलसी की । जो शुचि मानस मानस राजति राजि तहाँ सव पुण्य यशी की ॥ तीरथ तीर थके कविहेरत है रतराम सिया पतिनी की । देव"कुमार" कुमारग होत गहो तव आश सुमानस हीकी ॥ रामको न मानै ताको रावण को वंश जानों, कृष्ण को न माने ताको कंश वंश मानिये । वेद को न मानै वृक वृषभसमान जानो शास्त्र को न माने ताको साड़िया वखानिये ॥ माता पिता गुरुको न मानै विड़ वराह सों तो, द्विजदेव को न माने ताहि रापभ पिछानिये । भक्ति भाव सानी हुलसी "कुमार" तुलसी की भाषा को न मानै ताको साखा मृग जानिये ॥ २ ॥

❀ ॐ गुं गुरवेनमः श्री गुरुःशरणं मम् श्री गुरुःशरणं मम् ❀

❀ श्री मैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्री सन्मारुतनन्दनाय नमः ❀

❀ श्री मते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ❀

* श्रीगुरुमङ्गलाचरण *

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदंदर्शितं येन तस्मै श्री गुरवेनमः॥१

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मैश्रीगुरवेनमः ॥२

अर्थ- जिसने अखण्ड मण्डल (गोलाकार) जड़ चेतनात्मक जीवों समेत ब्रह्माण्ड रूपी समस्त विश्व को व्याप्त कर रक्खा है, जो सर्वदा एकरस अखण्ड रूप में ही रहता है। उस परंब्रह्म परमात्मा को जिनने लक्षित कराया है, उन श्रीगुरुदेवजी को नमस्कार है॥१॥ श्री गुरुदेव जी ब्रह्मा के समान शिष्य के हृदय में सद्गुण,सद्विचार ,सद्भावनायें, सद्-वृत्तियों को प्रगट करते हैं। पुनः अपने दिव्य उपदेशामृत द्वारा भगवान् विष्णु के समान सद्गुणों, सद्विचारों सद्भावनाओं एवं सद्वृत्तियों का पोषण करते हैं। और शिक्षाप्रद उचित डाँट फटकार लगाकर रुद्र के समान अपने शिष्य के अवगुणों, असद्विचारों, कुभावनाओं, और कुवृत्तियों का नाश करते हैं। और श्री गुरुदेव ही साक्षात् परंब्रह्म परमात्मा को लक्षित कराते हैं। ऐसे परम कृपासागर श्री गुरुदेव भगवान को नमस्कार है। ॥२॥

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन सलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येनतस्मै श्रीगुरवेनमः॥३

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम्। अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्देगुरुपरम्पराम्॥४

जिनने कृपा करके ज्ञानरूपी अंजन को सलाई से लगाकर अज्ञान रूपी अँधेरेसे अन्धी हुई आँखों को खोल दिया है। उन श्री सद्गुरु भगवान् को नमस्कार है॥३॥ जड़ चेतनात्मक समग्र विश्व के एक मात्र मूलकारण भगवान् श्री सीताराम जी से प्रारम्भ होने वाली, जिसके मध्य में जगद्गुरु अनन्त श्री स्वामी रामानन्दाचार्य हैं, और हमारे श्रीसद्गुरुदेव, पर्यन्त स्थित है, ऐसी श्री गुरु परम्परा की वन्दना करता हूँ॥४॥

❀ श्रीसीताराम वन्दना ❀

श्यामां सरोजवदनां मृगपोतनेत्रीं, मन्दस्मिता मुर्रासजां मृदुमञ्जुकेशीम् ।
श्रीपाणिपद्ममणिभूषणभावितार्ङ्गी, संजीवनीं शरणमेमि च रामरामाम् ॥ १ ॥
श्यामा तन द्युतिहेम प्रभा मम बदन सोहावन । परमानन्द स्वरूपप्रेमरतिरसप्रगटावन॥१॥
मृगशावक ज्यों सरस नयन मंजुल अति पावन ।
चितवनि सौम्य रसाल रसिक वर मन ललचावन ॥२॥
मजु मधुर मृदु हँसन लसन प्रीतम वश करनी ।
निज इच्छा अनुसार सदा लीला तन धरनी ॥३॥
मंजुल मंजु सुकेश सरस मनहरन सुधारे ।
शुचि सुन्दर सुठि सुमन केर मालादि सम्हारे ॥४॥
दिव्य भव्य आभरण अंग भूपित छविखानी ।
शोभित सुषमा मदन रसिक रघुवर पट रानी ॥५॥
अमल सरस प्रिय तरुण अरुण कल कमल धरे कर ।
राजत श्री मैथिली मधुर मृगति सनेह घर ॥५॥
नृपकिशोर चितचोर चतुर चूड़ामणि मनहर ।
प्राण सजीवन मूरि सरिस मानत श्री रघुवर ॥७॥
श्रीविदेहनन्दिनी चरण शरणागत जानी ।
दीजै प्रेम प्रवाह हृदय भरि रति रस खानी ॥८॥

दोहा—हे करुणागुण आगरी, क्षमा दया भण्डार ।
सीताशरण शरण परयो, करगहि लेहु सम्हार ॥ १ ॥

श्यामं पिसङ्गवसनं वनजातनेत्रं, प्राणप्रियं प्रणतपालमपाररूपम् ।
स्मेरं सुधांसुवदनं मणि भूषणाङ्गं, रामं नमामि वचसावपुषा हृदा च ॥ २ ॥
कोटि काम कमनीय श्याम सुन्दर मन मोहन ।
पीत वसन शुचि कमल अमल वर नैन सु जोहन ॥१॥
प्राणहुँ ते प्रिय प्राण प्राण के जीवन दाता ।
शरणागत प्रतिपाल जाल भवहर जगत्राता ॥२॥
मन्द मधुर मुस्कान मंजु रसमय मृदुगाता ।
कोटिन चन्द्र लजात बदन सुख सदन सोहाता ॥३॥
मणि मंडित आभरण अमल भूषित छवि छावन ।
प्रेमिनप्रेमपियूष दान मन मोद बढ़ावन ॥४॥

अंग अंग रस सिन्धु सुघर प्रिय मधुर मनोहर ।
परिकर प्राणाधार प्यार पूरक सनेह घर ॥५॥
लीला लम्पट लसत ललित लालन अति लोने ।
परमानन्द सुमूर्ति अमित मन्मथ मद खोने ॥६॥
परतम, परमपरेश, परमगति, घट घट वासी ।
निजानन्द, निरुपाधि, अमल, अनुपम अविनासी ॥७॥
निर्विकार, निर्लेप, निराश्रय, सब जग कारण ।
सोइ मम जीवन प्राण प्रगटि भव भार उतारण ॥८॥

दोहा—रसमय मंजुल मूर्तिवर, सुषमागार उदार ।
सीता शरण सु स्वामि मम, रघुनायक श्रुतिसार ॥ २ ॥
जगजीवन जगदीश जो, जगताधार अशेष ।
राम रमेउ सब विश्व में, सुमिरत जाहि महेश ॥ ३ ॥
भाव प्रेम ग्राहक सतत, भक्त भक्ति परतन्त्र ।
वनिनित नव लीला करत, यद्यपि परम स्वतन्त्र ॥ ४ ॥

जयति जनक जायाः पादपद्मं मनोज्ञं हरिहर विधिवन्द्यं साधकानां सुसेव्यम् ।
नखर निकरकान्तं मुद्रिका नूपुराद्यैः वरमुनि हृदि मध्ये योग योगीश भाव्यम् ॥३॥

अर्थ-श्रीजनकराजकिशोरी जू के पावनाति पावन परम मंगलमय श्रीचरण कमलों की जय हो। जिन श्री चरण कमलों को, सर्वदा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अपने मन मानस में ध्यान करके, सादर सप्रेम अर्चन वन्दन करते रहते हैं। त्रिदेवों समेत अन्य सभी देवता एवं सभी साधकों द्वारा, परमप्रेममयि भक्ति भावना पूर्वक, सम्यक प्रकार पूजित श्री-चरणों की श्री नखमणि चन्द्रिका, अपनी ज्योतिष्ना से समस्त लोकों को प्रकाशित करती है। और उन श्री चरण कमलों में, दिव्यातिदिव्य काञ्चन रत्नमणि जटित मुद्रिका, तथा नूपुरादि आभूषणों का परम प्रिय मधुर रसमय शब्द प्रगट हो रहा है। श्रेष्ठ मुनिगणों और योगी एवं परमहंस योगीराजों द्वारा, जिन श्री चरणों की भावना की गई, अर्थात् यह सभी महामुनि समूह, परमहंस और योगीराज, सर्वदा अपने हृदय निकुन्ज में, भक्ति भावना पूर्वक, सेवन करके अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं।

श्लोकः--जय जय रघुराज प्राणिपुण्यावतार मधुर मधुर मूर्ते चन्द्रकीर्ते रसेन्द्र ।
अविनव नवभावैर्मादशान्दाम भृत्यान् भर नर वरभूप पादमूलोपसन्नान ॥४॥

अर्थ-हे श्रीरघुराजकिशोर श्रीरामजी ! आपकी जय हो जय हो २। आप अखिल विश्व के सभी प्राणिमात्र के पुण्यस्वरूप प्रगट हुये हैं, अर्थात् आप विश्वात्मा हैं, समस्त देवी देवता एवं त्रिदेवादिकों तथा, भगवान् या ईश्वर शब्द वाच्य प्रेरकों के भी, परम प्रकाशक

आपही हैं। आपकी परम मंगलमय मञ्जुल मधुरातिमधुर सरस प्रियमूर्ति, प्राणिमात्र के लिए परम सुख प्रदायक है। हे रसेन्द्र ! अर्थात् रसिकों में सर्वश्रेष्ट, भवदीय निर्मलनिष्कलंक, निरावरण, कमनीय कीर्ति, समस्त लोको' में प्रकाशित है। श्रेष्ट भूपालों' की पंक्तियाँ हाथ जोड़े, अपने मणिमय मुकुटो' से ही, आपके श्री चरणकमलों' की आरती उतारते हैं, अस्तु हे राजराजेश्वर ! आप मुझे अपना भृत्य (दास) समझ कर, अपनी परम कृपामयि दृष्टि से अवलोकन कर, मुझे अपने श्री चरण कमलों' की नित्य सेवा में, सर्वदा के लिए श्रीचरणों' के निकट तमनिकट स्थान दीजिये। और ऐसी दया कीजिये कि मेरे हृदय में आपकी सेवा के, नित्य नये नये उद्गार (भाव) जाग्रत होते रहें। आपकी परमरसमयि मंजुल मधुर झाँकी, क्षण क्षणप्रति अतिसय प्रिय लगे, और मेरा मन मधुप आपके श्री चरणारविन्दों को, स्वप्न में भी कभीं नहीं त्यागे ॥

श्लोकः--वन्दे विदेह तनयापदपुण्डरीकं कौशोर सौरभ समाहृत योगिचित्तम् ।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं मन्मानमालिपरिपीतपरागपुञ्जम् ॥ ५ ॥

अर्थ--भूतमन भावन भगवान् श्री भोलेनाथ जी, स्तुति करते हुये श्री जानकी जी से कहते हैं कि--हे श्री विदेहराज किशोरी जी, मैं आपके श्री चरणकमलों की वन्दना करता हूँ। नवविकसित पूर्ण खिले हुये, परम सुगन्ध से भरे आपके जिन श्रीचरणकमलों को, योगि जन सर्वदा अपने चित्त में चिंतवन करते हैं। अर्थात् आपके श्री चरणकमलों की सरस प्रिय मधुर सुगन्ध, विशुद्धात्मा योगियों के चित्त को, हठात अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। फिर वे महा भागवत् परमहंस, योगिराज, सर्वदा आपके श्री-चरणारविन्दों के ही ध्यान में मगन रहते हैं। तीनों तापों से तपे हुये चेतनों के, दैहिक दैविक भौतिक सभी सन्तापों का समन करने वाले, मुनियों के मन रूपी मानसरोवर में हंस समान विचरने वाले, अर्थात् मुनियों द्वारा सेवित श्रीचरणकमल भक्त रूपी धानों को, परम सुखद पावस ऋतुसमान पराग से भरे हुये हैं, वे भयदीय श्री चरणारविन्द हमारे आश्रयदाता हैं। मैं आपके उन श्री चरणकमलों' की शरण में हूँ।

दूर्वा दलद्युति तनुं तरुणाब्ज नेत्रं, हेमाम्बरं वर विभूषण भूषिताङ्गम् ।
कन्दर्प कोटि कमनीय किशोर मूर्तिं, पूर्तिमनोरथ भवां भजु जानकीशम् ॥ ६ ॥

दूर्वादल सदृश्य मंगलमय मंजुल श्याम विग्रह वाले, पूर्णविकसित अरुण कमल के समान विशाल नेत्र वाले,विजली के समान चमकदार पीताम्बर धारण करने वाले,सर्वाङ्ग में यथोचित श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषित, (शोभित) करोड़ों' कामदेव से भी सौंदर्य युक्त किशोर मूर्ति, आश्रितों' के सर्वाभीष्ट प्रदायक, अर्थात् सभी कामनाओं' को पूर्ण करने वाले श्री जानकीनाथ भगवान् श्रीरामजी का भजन करता हूँ ॥

लोक प्राणांनिलप्राणं सर्व साधक साधकम्। प्रणमामि हनूमन्तं माधु बाधक बाधकम्॥

समस्त लोकों के प्राणभूत श्री वायुदेव के प्रियप्राण समान पुत्र, सर्व साधकों को सभी साधनों के सिद्धिफल देने वाले, और श्री राम भक्तों के बाधक जो खल उनके बाधक, ऐसे श्री हनुमान जी महाराज को प्रणाम करता हूँ॥

नमाम्यहं मारुतसूनु माञ्जनं, श्री जानकी जीवन प्रियम्।
सौमित्रि मित्रं कपिराज वल्लभं, श्री राम भक्तं शरणं प्रपद्ये॥८॥

पवन पुत्र श्री अन्जनी कुमार को मैं नमस्कार करता हूँ। जो श्री हनुमान जी श्री जानकी जीवन भगवान् श्री राम जी को प्राणाधिक प्रिय हैं। और माता श्री सुमित्रा नन्दन श्री लक्ष्मण जी के परम मित्र, एवं कपिराज श्री सुग्रीव जी के परम प्यारे, श्रीराम भक्त शिरोमणि श्री हनुमान जी की शरण में मैं प्राप्त हूँ॥

ॐ गुं गुरवे नमः श्री गुरुः शरणं मम श्री गुरु शरणं मम्

श्री मैथिली रमणो विजयते

❀ श्री गुरु महिमा माधुरी ❀

समस्त शास्त्रज्ञों एवं वेद वेदितव्यों को विदित ही है कि दृश्या दृश्य समस्त जगत के परमाधार, परमाश्रय, सृजक, संचालक औरनिस्तारक अहैतुकी कृपासागर, करुणा-वरुणालय, भक्तवत्सल, भावग्राहक, परम उदार परात्पर प्रभु श्री सीताराम जी हैं। सर्व-तन्त्र, स्वतन्त्र, सर्वेश्वर श्री सीतारामजी की विशद एवंविस्तृत महिमासे कोई भी विद्वान अपरिचित नहीं है। सभी निगमागम विमुक्तकण्ठसे आपकी कमनीय कीर्तिकामिनीकेकोमल कलित गीत गाते हैं। प्रभु श्रीसीताराम जी सर्वदा अपनी महिमा में ही प्रतिष्ठित रहते हैं। अखिलविश्व आप की इच्छाशक्ति (संकल्प)का विलाश है। श्री सीताराम जी की भृकुटि का संकेत पाते ही सर्वथा आपके आधीन रहनेवाली, आप की कृपा से महाबलवती माया क्षणमात्र में, अनन्तानन्तब्रह्माण्डों का सृजन करदेती है। पुनः उन सभी ब्रह्माण्डों में ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि त्रिदेव भगवान् श्री रामजीके अंश से प्रगट होकर संसारकी सृष्टिपालन एवं संहार लीला करते हैं। और श्री राम जी से परम अभिन्नात्मा आद्याशक्ति, श्रीसीता जी के अंश से प्रगट ब्रह्माणी, उमा, और श्रीलक्ष्मी जी त्रिदेवियाँ उन त्रिदेवों के सृष्टि लीला की सहयोगिनी होती हैं॥

शंभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना॥

श्री रा० च० मा० बा० का० दोहा १४८ पंक्ति ६ और –

जासु अंश उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमाब्रह्मानी॥

बा० दोहा १४८ पं० ३ एवं –

भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वाम दिशि सीता सोई ॥

उपरोक्त दोहा की पंक्ति ४ पुनः आरण्य काण्ड में –

भृकुटि विलास सृष्टि लय होई

दो० १५ पंक्ति ४ और यथर्ववेद में भी –

यस्यांशेनैव। ब्रह्मा विष्णु महेश्वराऽपिजाता महाविष्णुर्यस्य दिव्य गुणाः। –

सएव कार्य कारणयोः परः परम पुरुषो रामोदाशरथिर्बभूवः ॥

अर्थात निश्चय करके जिसके अंश से ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रगटहोते हैं। महाविष्णु जिसके दिव्य गुणस्वरूप हैं। कार्य और कारण से परे वही परम पुरुष श्री राम जी श्री दशरथ जी के घर में पुत्ररूप से प्रगट हुए। जिन श्री राम जी की महिमा का स्वल्पांश मात्र सती जी ने ऐसा दर्शन किया कि –

देखे शिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाव एक ते एका ॥

वन्दत चरण करत प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा ॥

सती विधात्री इन्द्रा देखी अमित अनूप।

जेहि जेहि वेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ॥

(श्री रा० च० मा० बा० का० दो० ५४ पंक्ति ७ से १० तक)

सती जी ने अनेक शंकर, ब्रह्मा विष्णु को एक से एक प्रभावशाली रूप में देखा। और इन्द्रादिक सभी देवताओं को भी अनेक प्रकार के वेष में श्री सीताराम जी के चरणों की वन्दना और सेवा करते देखा। अनेक सती अनेक ब्रह्माणी और अनेक लक्ष्मी जी को, उपमारहित आश्चर्य जनक रूप में देखा। ये सभी त्रिदेवियाँ उन त्रिदेवों के ही अनुरूप थीं। अर्थात् अनेक शंकर जी के साथ में तदनुरूप अनेक सती और अनेक ब्रह्मा जी के साथ में अनेक ब्रह्माणी और अनेक विष्णु भगवान के साथ अनेक लक्ष्मी जी श्री सीताराम जी की सेवा में उपस्थित थीं। पुनः माता श्री कौशिल्या जी ने भी अगनित रवि शशि शिव चतुरानन। अनेक सूर्य, चन्द्र, शंकर, ब्रह्मादिकों को श्री-राम जी में देखा। और श्री भुसुण्डी जी ने भी श्री राम जी के उदर (पेट) में—

कोटिन चतुरानन गौरीशा। अगणित उडगन रवि रजनीशा ॥

(रा० च० मा० उ० का० दो० ८० पंक्ति ३ से १० तक।

एक एक ब्रह्माण्ड में रहेउँ बरस सत एक।

यहि विधि देखत फिरौं मैं अण्ड कटाह अनेक ॥

अर्थात् अनेक ब्रह्माण्डों में अनेक प्रकार के ब्रह्मा, विष्णु, महेश; तारा, सूर्य और अनेक चन्द्रमाओं को देखा। पूर्णब्रह्म भगवान् श्री सीताराम जी की महिमा

ऋषियों ने शास्त्रों में इस प्रकार गाई है। जिसका दिग्दर्शन प्रस्तुत ग्रंथ में समीचीन रूप से उपलब्ध होगा।

परन्तु ब्रह्म तत्त्व के परिज्ञान के पूर्व श्री गुरु तत्त्व का बोध (ज्ञान) होना परमावश्यक है। क्योंकि शास्त्रों में गुरु तत्त्व की महिमा अपार रूप में पाई जाती है। पुनः शास्त्रों का विशेषार्थ श्री गुरु कृपा के बिना सर्वथा अप्राप्य रहता है। श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराणों के तत्त्व स्वरूप ब्रह्म का बोध प्राप्त करने के लिए एकमात्र श्री गुरुकृपा ही परमाधार है। विचारना यह है कि जागतिक किसी भी व्यवहार कार्य को. कोई भी व्यक्ति किसी से सीखे बिना नहीं कर पाता। तब आत्मा, परमात्मा, एवं विश्व सृष्टि के वास्तविकता का ज्ञान स्वयमेव (अपने आप) नहीं हो सकता है। अस्तु जिस व्यक्ति विशेष के द्वारा आत्म स्वरूप, परमात्म स्वरूप, अविद्या जनित अज्ञान से उत्पन्न होने वाले संसार का यथार्थ बोध हो। उसे ही गुरु कहते हैं। गुरु तत्त्व की जानकारी के बिना व्यक्ति के जीवन में उसकी आवश्यकता की अपेक्षा न होकर उपेक्षा हो जाती है। जानकारी होने पर ही गुरु तत्त्व की अपेक्षा मानव अपने जीवन में अनिवार्य रूप से समझता है। अस्तु गुरु तत्त्व की जिज्ञासा मानव मात्र को सर्वथा अपेक्षित है। इसलिये मानव मात्र को उचित है कि किसी भगवत् भक्ति परायण महानुभाव को गुरुरूप में वरण (स्वीकार) करके इस अज्ञान अन्धकार दुखमय संसार से छुटकारा पाने का मार्ग प्राप्त करें। एक बात का ध्यान रखना अनिवार्य है कि-कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के द्वारा किसी साधक की व्यर्थ प्रसंशा सुनकर भ्रम में पड़कर उस साधक में श्रद्धावान होकर उसे गुरु रूप में स्वीकार न करें। अन्यथा बाद में बहुत ही पछताना पड़ेगा। यदि गुरु वरण करना हो तो स्वयं ही भलीभाँति निरीक्षण करके तब गुरु वरण करें। जिस महानुभाव के प्रति अपनी आत्मा यह स्वीकार करले कि ये वास्तव में सच्चे महापुरुष हैं। इनमें सामर्थ है कि अपने उपदेश के द्वारा हमारे अज्ञान को नाश करके दिव्य ज्ञान हमारे हृदय में भर देगें। और इनके बताये हुये मार्ग पर चलने से निश्चय ही हमारा कल्याण हो जायेगा। तभी किसी महानुभाव से दीक्षा प्राप्त करें। जितना अन्वेषण करना हो गुरु वरण के पूर्व ही कर लें। क्योंकि अपने जीवन की बागडोर सौंपना है। इसलिये अन्वेषण करना परम अनिवार्य है। ऐसी कोई आपत्ति नहीं है कि आज और अभी ही गुरुवरण कर लें। जो भी मिल जाये उसे ही गुरु बना लें। अच्छी प्रकार सोच विचार कर गुरुवरण करे। स्वयं बिना विचारे और के बहकाये से किसी को गुरु नहीं बनाना चाहिये। भोरे स्वभाव के लोग दूसरे के कहने पर किसी साधक को गुरु मान लेते हैं। बाद में बहुत पछताते हैं कि हमसे भूल हो गई। इसलिये प्रथम ही खूब जानकारी करके ही किसी को गुरु बनाना चाहिये। जिस साधक में दोष हों उसे गुरु न बनावें। सर्वथा निर्दोष भगवत् भक्त, सभी विषयों से परम विरक्त,

वेद शास्त्रों के ज्ञाता, महापुरुष को अपना गुरु बनावें। गुरुवरण करने के बाद उनके दोषों का निरीक्षण करना महान् अपचार है। अस्तु मानव मात्र को उचित है कि किसी महापुरुष को गुरु रूप में वरण करके, उनकी सेवा सुश्रूषा करते हुये, उनके अमृतमय शुभ उपदेशों का पालन करके, मानव शरीर पाने का परम लक्ष्य भगवत् कृपा को प्राप्त करें। मानव देह पाकर भी यदि जन्ममरण रूपी संसार चक्र न छूट सका, तो फिर चौरासी चक्र में पड़कर पुनः महान कष्ट उठाना पड़ेगा। अनन्त करुणावरुणालय प्रभु ने, जीवों को मानव देह केवल इसी लिये प्रदान की है कि शास्त्रोक्त शुभ साधन करके संसार चक्र से मुक्त हो, प्रभु की कृपा को प्राप्त करके, शाश्वत अमृतमय भगवान् के दिव्य धाम में, पार्षद रूप से प्रभु को प्राप्त हो, नित्य कैंकर्य को प्राप्त करे। अस्तु संसार चक्र से मुक्त होने तथा प्रभु की प्राप्ति करने की इच्छा रखने वाले सज्जनों को, सच्चे महापुरुषों से दीक्षा लेकर ही भजन करना चाहिये।

❁ गुरु दीक्षा की आवश्यकता ❁

प्रश्न—क्या गुरु दीक्षा के बिना भगवान् नहीं मिल सकते।

उत्तर—भगवान स्वतन्त्र हैं, वह अपनी अहैतुकी कृपा से चाहे महान पापी को ही क्यों न मिल जायें। और गुरुदीक्षित भजन करने वाले को भी न मिलें। परन्तु यह नियम सर्व साधारण के लिये सामान्यतया नहीं हो सकता है। भगवान् ने ही ऋषियों को प्रेरणा करके सद्ग्रन्थों की रचना करवाई है। उन सभी सत्शास्त्रों में; गुरु दीक्षा लेकर भजन करने पर ही, भगवत् प्राप्त का विधान बताया है।

प्रश्न-भगवान् तो प्रेम पूर्वक भजन करने से मिलते हैं, तब गुरु दीक्षा की परमावश्यकता क्यों है।

उत्तर-बिना गुरु दीक्षा लिये भजन करने का विधान ही समझ में नहीं आवेगा, बिना विधान जाने भजन कैसे करेगा। और भगवान को बिना जाने उनमें प्रेम होना असम्भव है।

प्रश्न-क्या गुरु दीक्षा लेनें से भगवान का ज्ञान एवं उनमें प्रेम हो जाता है।

उत्तर-भाई गुरु शब्द का तो अर्थ ही यह है कि शिष्य के हृदय में से अज्ञान रूपी अन्धकार को अपने शुभ उपदेशामृत से दूर करके आत्मा के ज्ञान रूपी दिव्य प्रकाश भर दें। जब हृदय का अज्ञान नष्ट हो जायेगा। तब मैं कौन हूँ। मेरा कर्तव्य क्या है। मैं किसके लिये हूँ। मेरा रक्षक एवं भोक्ता कौन है। उससे मेरा क्या सम्बन्ध है। मैं अपने उस परम प्रियतम से अलग क्यों हो गया, मेरे और उन प्रभु के बीच में कौन है, जो हमें अपने परम प्रियतम प्रभु से मिलने नहीं देता। प्रभु से मिलने का उपाय

क्या है। और प्रभु से मिलने का परिणाम क्या होगा। ऐसी अनेक उपयोगी बातों की जानकारी श्री गुरु कृपा से होती है। इन सब बातों को श्री गुरुदेव के अतिरिक्त विभियत कौन समझायेगा। और उपरोक्त बातों का बिना ज्ञान हुये, भगवानमें प्रेम कैसे होजायेगा। अस्तु गुरु दीक्षा की परमावश्यकता है। बुद्धिमानों को गुरुदीक्षा अवश्य ही लेना चाहिये।

प्रश्न-क्या सभी जीव भगवान् के अंश नहीं हैं, यदि हैं तो गुरु दीक्षा रूप आवरण की आवश्यकता क्यों।

उत्तर-यद्यपि सभी जीवात्मा भगवान् के ही अंश हैं। यह बात सर्वथा सत्य है। तथापि अविद्याकृत अज्ञान के कारण, सभी आत्मा यह नहीं मानते कि हम परमात्मा के अंश और उनके ही भोग्य हैं। अज्ञान एवं भ्रम के कारण अपने को उन परम प्रभु के परतन्त्र न मानकर स्वतन्त्र और स्वयं भोक्ता मानता है। इसलिये हमको भगवान् से मिलना अनिवार्य है ऐसी जिज्ञासा ही नहीं जगती, तब प्रभु उनसे कैसे मिल पायें। श्री-सद्गुरु कृपा से इस बात का ज्ञान हो जाता है कि हम प्रभु के परतन्त्र और उनके ही भोग्य हैं। हमारे एकमात्र भोक्ता और रक्षक भगवान् ही हैं। उनकी सेवा कैंकर्य करना हमारा सहज स्वरूप है। अनित्य संसार के सभी सम्बन्धों को त्यागकर अपने प्राणाधार प्रभु के श्री चरणकमलों का दर्शन सेवन अर्चन करना ही हमारा एकमात्र लक्ष्य है। तब उनमें प्रेम स्वभाविक होता है। श्री सद्गुरु के बिना यह ज्ञान कौन करायेगा। अस्तु गुरुदीक्षा लेना सभी को परमावश्यक है।

प्रश्न-यदि हम किसी व्यक्ति को गुरु न बनाकर भगवान् श्री हरि को ही गुरु मानकर भजन करें तो क्या हानि है। मनुष्य तो सभी एक समान हैं, उनको गुरु बनाने से क्या लाभ है।

उत्तर-भगवान् श्री हरि तो चराचर जगत के परमाराध्य हैं ही। इसमें दो मत नहीं हैं। परन्तु भगवान् का कार्य अलग है। सद्गुरु का कार्य दूसरा है। यद्यपि भगवान् सत्य संकल्प हैं। यदि चाहें तो समस्त जगत को एक क्षण के अन्दर ही आत्मा परमात्मा माया का दिव्य ज्ञान कराके, सभी जीवों को विषयों से विमुख करके, अपना प्रेम प्रदान करके अपने नित्यधाम ले जासकते हैं। तथापि ऐसा करते नहीं हैं। भगवान् का कार्य है विश्व की सृष्टि, पालन, पोषण करना। पुनः स्वेच्छा से अपने में ही विलीन कर लेना, किन्तु शिक्षा दीक्षा देने का कार्य भगवान् ने भगवान् रूप से अपने हाथ में न रखकर अपने ही अभिन्नात्मा प्रिय भक्तों को सौंप दिया है।

अस्तु उपदेश देना भगवत् भक्तों का कार्य है। भगवान् का नहीं। दूसरी बात यह भी है कि-यदि हम भगवान को गुरु मान लें, ठीक है, फिर भगवान् किसे मानेगे। गुरु शब्द का तो अर्थ ही यह है कि-माया ग्रसित जीव को समस्त विषयों से

विमुख करके भगवान् श्री हरि में लगावे। एक समस्या यह भी है, कि भगवान् हमें मिलेंगे कहाँ, कि हम उन्हें गुरु मान लें। यदि मिल भी जायें तो फिर गुरु बनाने की आवश्यकता ही समाप्त हो जायेगी। भगवान् से मिलने के लिये ही गुरु बनाया जाता है। सभी जीवों के परम प्राप्य भगवान ही हैं। उनसे बढ़कर कोई और तत्त्व है ही नहीं। तब भगवान को गुरु बनाने से भगवान् किस तत्त्व का उपदेश देगें। यदि कहा जाये कि बिना मिले ही मन से भगवान् को गुरु मानकर भजन करने लगें। यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि गुरु तो शिष्य को प्रत्यक्ष होकर उपदेश देते हैं। भगवान् मन में ही हैं, तब मन्त्र दीक्षा कहाँ मिलेगी। कौन देगा। और उस मन्त्र का अर्थ एवं जप विधि, भगवान् का ध्यान, मनमें उठने वाली शंकाओं का समाधान कौन करेगा। इस पर यदि कोई कहे कि सभी मन्त्र पुस्तकों में लिखे हैं। जो प्रिय हो, उसे याद करके जपने लगे। अर्थ किसी भी विद्वान से पूछ लें, गुरु बनाने की क्या आवश्यकता है। यह कार्य भी ठीक न होगा। क्योंकि पुस्तकों में लिखा मन्त्र अचेतन (जड़वत) माना जाता है। उसका जप करने पर चैतन्यता आती है। यदि किसी विद्वान् को बिना ही गुरु माने, अविधि से मन्त्रार्थ पूछेंगे तो वह बतायेगा ही नहीं। उदारता पूर्वक यदि बता भी दे तो श्रद्धारहित होने से लाभ न होगा। अस्तु संसार से मुक्ति और भगवत् प्राप्ति की कामना वाले सज्जनों को तर्क छोड़कर अवश्य ही गुरु वरण करना चाहिये।

प्रश्न-क्या गुरु ही भगवान् के ठेकेदार हैं। कि उनकी कृपा के बिना जीव को भगवान् नहीं अपनायेंगे।

उत्तर-यद्यपि भगवान् श्री हरि कृपा सागर हैं। तथापि यह उनका सहज स्वभाव है, कि अपने भक्तों के द्वारा ही किसी को अपनाते हैं, यह उनका अपना स्वतन्त्र विधान है। विशेष ध्यान देने वाली एक बात यह भी है कि-जिसे भगवत प्राप्ति की कामना होगी, वह व्यक्ति नाना प्रकार की तर्कों में न पड़कर भगवान् के विधान को सहर्ष स्वीकार कर लेगा और जिसे संसार ही प्रिय है, उसे वहीं आनन्द का अनुभव करना चाहिये। भगवान् से मिलने वाले सज्जनों को तो, संसार के सभी सम्बन्धी, शारीरिक सभी सुख स्वाद और लौकिक मान प्रतिष्ठा त्यागकर, योग्य महानपुरुष को गुरु वरण करके, उनकी आज्ञानुसार ही भजन साधन करना परमश्रेयकर होगा। साधारण जीवों की कौन कहे, स्वयं भगवान् श्री हरि ही जब भक्तों पर कृपा करके मानव रूप में प्रगट होते हैं, तब यद्यपि प्रभु ज्ञान विज्ञान के रूप ही हैं, तथापि हम जैसे तुच्छ जीवों के शिक्षार्थ गुरुवरण करने की लीला करके दिखाते हैं। यद्यपि आपको बिलकुल आवश्यकता नहीं है। यथा-भगवान् श्री राम जी ने श्री वशिष्ठ जी को स्वीकार किया था। भगवान् श्री कृष्ण जी ने श्री सन्दीपन ऋषि को गुरु रूप में वरण किया था। अस्तु मानव मात्र को गुरु वरण करने की अत्यधिक आवश्यकता है।

प्रश्न-क्या गुरु ही साक्षात् पारब्रह्म परमात्मा है। जैसे कि कहा जाता है कि-
गुरुसाक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

उत्तर--गुरु ही भगवान् हैं। तब भगवान् क्या रहेंगे। गुरु भगवान नहीं हैं। भगवान को बताने वाले हैं। यद्यपि सत्यबात यही है। तथापि भगवान का स्वभाव है कि गुरु का पद अपने से भी अधिक मानते हैं। यह है भगवान् की उदारता। और लोकलीला में भगवान ने सर्व सामान्य एवं विशेष सभी के लिये यही सिद्धान्त बनाया है कि-शिष्य अपने श्री गुरुदेव को मुझ से भी अधिक आदर करे। अस्तु भगवान के इस सिद्धान्ता--नुसार जो भक्त भगवान की कृपा प्राप्त करना चाहे तो श्री सद्गुरुदेव को भगवान् से भी अधिक श्रद्धा भक्ति युत अर्चन वन्दन करे। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भगवान को भूल जाये। गुरुतत्त्व जीव को भगवान में लगाने के लिये ही है। स्वतन्त्र ब्रह्म नहीं है। यदि कोई साधक गुरु को स्वच्छन्द ब्रह्म माने तो उसकी गुरु निष्ठापर भगवान् श्री हरि रीझ कर उस भक्त को अपनी भक्ति करने वाले की भी अपेक्षा अधिक प्यार प्रदान करेंगे। किन्तु सर्व सामान्य से ऐसी निष्ठा कर आद्योपान्त निर्वाह होना असंभव है। कारण यह है कि श्री सद्गुरु के पार्थिव शरीर में मानवोचित सभी क्रियायें होना अनिवार्य हैं। यदा कदा दोष दर्शन होना भी सम्भव है। क्यों कि पंचभौतिक शरीर धारियों में संस्काराधीन गुण एवं दोषों का उदय होना भी अनिवार्य है। उसका कारण यह है कि सभी चेतनात्माओं का शरीर पूर्व जन्म कृत शुभाशुभ कर्मानुसार ही प्राप्त होता है। इसलिये शारीरिक क्रिया का परिवर्तन होना अनिवार्य है। सर्वशास्त्रों का मन्तव्य है कि ब्रह्म कर्माधीन शरीर धारण नहीं करता। शरीर धारण करने पर भी वह पूर्ण स्वतन्त्र रहता है। परतन्त्रता कभी उसे स्पर्श भी नहीं करपाती। उस अवस्था में भी वह पूर्ण तथा सम्पूर्ण विश्व का नियमन करता रहता है। सर्वव्यापकता, सर्वप्रेरकता, एवं सर्वसंरक्षकता उसी में समाहित रहती है। और गुरुदेव का शरीर आधि व्याधिग्रसित होते तथा विसर्जन होते देखा जाता है। तब सर्व साधारण तथा जन समुदाय श्री गुरुदेव को भगवान कैसे मान पायेगा। यदि कहा जाये कि रोग व्याधिया शरीर त्याग यह तो श्री सद्गुरुदेव की लीला है। इस में बात ऐसी है कि तब तो शिष्यों का भी रोगी होना या शरीर विसर्जन को भी लीला मानना पड़ेगा। तो गुरु शिष्य समान हो गये। न कोई भक्त बचा न भगवान। ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि--गुरुदेव भी तो भगवान का भजन करते हैं। यदि स्वयं भगवान हैं तो भजन करने की आवश्यकता नहीं है। जन्मजात कोई भी गुरु नहीं होता। बाद में सत्शास्त्रों का अध्यन एवं सत्संग तथा भगवान का भजन करके ही सभी गुरुबनते हैं। तब भगवान तो नहीं। भगवान के परम प्रिय भक्त अवश्य ही हैं। भगवान का स्वभाव है, कि अपने भक्तों को, अपने समान ऐश्वर्य देकर अपने समान या अपने से भी अधिक बनाये रहते हैं। उस अवस्था में भी सृष्टि लीला, भरण पोषण, प्रलय, प्रेरणा

आदि कार्य अपने हाथ में ही रखते हैं। भक्तों को समर्पित नहीं करते। भगवत् कृपा से मुक्तावस्था में भगवान की सामीप्यता प्राप्त होने पर ब्रह्म सूत्र अ० ४ पा० ४ के २१वें सूत्रमें लिखा है कि-भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च अर्थात् ऐश्वर्य सुख-भोग अपने समान प्रदान करते हैं। तथापि-जगत् व्यवहार वर्जनम्॥ उस अवस्था में भी जगत व्यवहार प्रभु अपने ही हाथ में रखते हैं। भक्त को नहीं देते हैं। तब सोचिये कि इस प्राकृत लोक में प्राकृत शरीर को भगवान मानना कहाँ तक सत्य होगा। अस्तु श्री गुरुदेव को भगवान न मान कर भगवान का परम प्रिय भक्त मानना चाहिये॥

प्रश्नः-- भक्तमाल में लिखा है कि- भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुर्नाम वपु एक। भक्त तथा भक्ति और भगवान एवं गुरु ये चारों नाम एक ही शरीर के हैं। तब गुरु देव को भगवान क्यों न माना जाये?

उत्तरः- यह बात भक्तमाल लेखक महाराज श्री की उच्चतम दिव्य भावना की है। इसका रहस्य यह है कि- यदि साधक भगवान के भक्त एवं प्रभु की भक्ति तथा भगवान और श्री गुरुदेव को भिन्न-भिन्न मानेगा, तो उसके मन में भगवान की अपेक्षा भक्त, भक्ति और गुरु देव में भाव कम रहेगा। श्रद्धाभाव के अभाव में साधक को गुरु वचनों में विश्वास न होगा, गुरु वचनों में विश्वास न होने से उनकी बताई हुई साधना भी नहीं करेगा। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि:- साधक जब तक जागतिक सम्बन्धी जनों में आशक्त रहेगा। शारीरिक सुख स्वाद में लम्पट रहेगा, तब तक भगवान की कृपानुभव न हो सकेगी। सभी जीव स्वभाव से ही शारीरिक सम्बन्धी एवं सुख स्वाद में आशक्त हैं। तब संसार से वैराग्य और भगवान में अनुराग प्रदान करने वाले, श्री गुरुदेव के अतिरिक्त और कौन हैं। क्यों कि गुरु देव ही कृपा करके यह बतलाते हैं कि- संसारी सभी पदार्थ अनित्य हैं। और कोई भी किसी का सम्बन्धी नहीं है। सभी अपने ही स्वार्थ परायण हैं। भगवान की भक्ति एवं भक्तों की महिमा अपार है। भक्तों के द्वारा कीगई भक्ति भगवान को वश करलेती है। सभी जीवात्माओं के प्राप्य एक मात्र भगवान श्री हरि ही हैं। तभी कोई भावुक भगवान तथा उनके भक्त एवं प्रभु की भक्ति के प्रति प्रेम करता है। भगवान का स्वभाव है कि अपने भक्तों को स्वामी मानते हैं। स्वयं उनके भक्त बन जाते हैं। यथा- शंकर जी को भगवान बनाकर पूजन करते हैं। फिर भी शंकर जी भक्त ही हैं, भगवान नहीं हो पाये। इसी प्रकार भक्ति भी प्रभु के श्री चरण कमलों की सेवा में ही रहने वाली हैं। प्रभु से पृथक सत्ता नहीं है। भगवान से सम्बन्ध होने पर ही भक्त भक्ति, एवं श्री गुरुदेव जी की अपार महिमा है। स्वतन्त्र नहीं। यह बात अवश्य ही है, कि जीव जब तक प्रेम पूर्वक भगवान की

भक्ति न करेगा। और प्रभु के भक्तों को अपना पूज्य नहीं मानेगा। तथा श्री गुरुदेवजी को भगवत् स्वरूप न मानेगा। तब तक भगवान की कृपा दृष्टि की वृष्टि न होगी। इसी लिये पूज्य चरण श्री नाभा स्वामी जी ने। भक्त, भक्ति, भगवन्त गुरु चतुर्नाम वपु एक कहा है ॥ तत्त्वत: ये चारों ही एक हैं। स्वरूपत: चारों भिन्न हैं। अस्तु इन चारों को अभिन्न मानते हुये भी भक्ति (उपासना) तो भगवान की ही करनी चाहिये। समयानुसार यथा शक्ति सेवा सुश्रूषा भगवन् भक्त एवं श्री गुरुदेव जी की भी भाव पूर्वक करना परमावश्यक है। कारण कि भगवान भक्त और गुरु-देव जी की सेवा के बिना किसी की सेवा को अपनी सेवा नहीं मानते हैं। प्रभु की कृपा चाहने वालों को प्रभु के भक्त और श्रीगुरुदेवजी को भगवान से पूर्व और अधिक श्रद्धा प्रेम रखना चाहिये। कोई भी भक्त सभी भक्तों की भावना का ठेकेदार नहीं है। भावना करने में सभी भक्त स्वतन्त्र हैं। श्रीनाभा स्वामी जी की ही भावना सभी भक्तमान लें, यह अनिवार्य नहीं है। ऐसा होता भी नहीं है। न होना सम्भव ही है। प्रेरक प्रभु अनेक भक्तों के हृदय में अनेक प्रकार की भावना उत्पन्न करते हैं। जिस भक्त के हृदय में ऐसी भावना होती हो कि श्रीगुरुदेवजी साक्षात ब्रह्म हैं, तो उसके ऊपर प्रभु की महान कृपा है, उसे ऐसी भावना करना चाहिये। किन्तु जिसके मन में कभी भी ऐसी भावना नहीं आती कि-श्रीगुरुदेवजी साक्षात् ब्रह्म हैं, तो उसको नास्तिक समझना या मूर्ख कहना भी बुद्धिमानी नहीं है। **'भक्त भक्ति भगवन्त गुरु, चतुर्नाम वपु एक। इनके पद वन्दन किये, नासैं विघ्न अनेक ॥'** जिस भक्त को उपर्युक्त लाभ की आवश्यकता होगी। वह भक्त भक्ति भगवन्त गुरु को एक रूप मानेगा ही। किन्तु जिसे आवश्यकता नहीं है, उसके माथे बरबस मढ़ना भी अच्छा नहीं है। श्री गुरुदेवजी केवल अपने परम श्रद्धालु शिष्य के ही लिये ब्रह्म हैं। न तो अपने लिये ब्रह्म हैं, न शिष्य के अतिरिक्त किसी भी अन्य के ही लिये ब्रह्म हैं। शिष्य की श्रीगुरुदेवजी के प्रति श्रद्धा विश्वास दृढ़ बना रहे, इसीलिये मान्यता है कि—**'गुरु साक्षात् परब्रह्म वस्तुत:'** जीव कभी भी ब्रह्म होता ही नहीं है। ऐसा ही सिद्धान्त सभी श्रीवैष्णवाचार्यों का है। तब गुरुदेह में निवास करता चेतन (जीव) ब्रह्म क्यों हो सकता है। अस्तु श्रीगुरुदेवजी को ब्रह्म मानने या न मानने में शिष्य की अपनी श्रद्धा ही मूल कारण है। जिसकी श्रद्धा हो माने। जिसकी श्रद्धा न हो वो वह नहीं माने। हाँ यह बात अवश्य ही है कि-जो शिष्य श्रीगुरुदेवजी को ब्रह्म (भगवान) ही मान कर सेवा सुश्रूषा करेगा। उस पर भगवान श्रीहरि प्रसन्न होकर अपनी कृपा-दृष्टि की वृष्टि अवश्यमेव करेंगे। यदि शिष्य ब्रह्म भाव रखकर निष्ठा पूर्वक श्रीगुरु सेवा करता है, अथवा करेगा, तो निश्चय ही प्रभु की कृपा प्राप्त करेगा। तथापि अश्र-द्धालु शिष्य को मन न चाहने पर भी यह बोझा ढोना कि गुरु ब्रह्म हैं, अनिवार्य या आवश्यक नहीं है।

प्रश्न—श्रीगुरुदेवजी की किन २ आज्ञाओं का पालन किया जाये ?

उत्तर—सर्वदा इस बात का विशेष ध्यान रहे कि–गुरु शब्द का अर्थ क्या है ? हमने गुरु बनाया किसलिये है। हमारा गुरु से सम्बन्ध क्या है। तब कभी भी भूल न होगी। गुरुशब्द का मोटा अर्थ है कि—दुख, अज्ञान, अन्धकारमय इस संसार सागर से मुक्त करके सुख, ज्ञान, प्रकाशमय सच्चिदानन्दघन प्रभु की ओर चित्त को लगावे। अस्तु प्रत्येक साधक को चाहे बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुँसक कोई भी हों, सभी को श्रीगुरुदेवजी की उन्हीं आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। जिनके पालन से साधक का मन भगवान् श्रीहरि की भक्ति एवं भक्त तथा श्रीगुरुदेव के प्रति विशुद्ध भाव से लगा रहे। ऐसी आज्ञा का पालन न करे कि-जिसके पालन करने से भगवान् तथा प्रभु की भक्ति (उपासना) भगवत् भक्तों एवं गुरुदेवजी के प्रति ही श्रद्धा का अभाव हो जाये। प्रथम बात तो यही है कि-भली भाँति छान-बीन करके तब गुरुवरण करे, कामी, क्रोधी, लोभी, लम्पट स्वभाव वाले व्यक्ति को गुरुरूप में वरण ही न करे। चाहे उसमें लाखों गुण, कलायें, चमत्कार क्यों न हों। लोक में चाहे जितनी भी प्रतिष्ठा हो। कितना भी असाधारण पाण्डित्य, वाक्य पटुता, व्यवहार कुशलता क्यों न हो। फिर भी उपर्युक्त दोष संयुक्त व्यक्ति को गुरु न बनावे। साधक जिसे गुरुवरण करना चाहता हो, स्वयं ही उसके स्वभाव व्यवहार का पता लगाने के बाद जब अपना मन माने तब गुरुवरण करे। जिस जिस महान पुरुष का भगवान् के भक्तों तथा प्रभु की भक्ति और भगवान् श्रीहरि में स्वभाविक प्रेम हो। प्रभु के नाम, रूप, लीला, धामादि में भलीभाँति श्रद्धा प्रीति हो। जो शान्तचित सरल विचार उदार प्रकृति एवं विशुद्ध भाव वाला हो। ऐकान्तिक प्रिय प्राणिमात्र का हितचिन्तक हो। उसे गुरु रूप में वरण करे। यदि बिना ही विचार किये, प्रचारकों के द्वारा किसी की झूठी प्रशंसा सुनकर शीघ्रतावश शिष्य बन गये, तो जीवन भर पछताना पड़ेगा। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँच विषयों से मुक्त होने वाले उपदेश ही गुरु को देना चाहिये। भूल से पाखण्ड परायण व्यक्ति को गुरु बनाने पर वह इन विषयों में ही आबद्ध होने वाला उपदेश करेगा। वर्तमान युग में न जाने कितने ही पाखण्ड मूर्ति व्यक्ति हैं, जो अपने ही लघु वयस्क शिष्य एवं शिष्याओं के साथ विषयावृत्ति परायण हैं। परन्तु फिर भी जो भगवत् भक्त हैं, जिसमें प्रभु कृपा से गुरुता है। वह भूलकर भी ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता। जिसने गुरु शिष्य धर्म को जाना ही नहीं। बाहरी वेष बनाकर ही पुजा खाना सीखा है। उन्हीं की बधाई समाजमें यत्रतत्र बजती है। और बजती रहेगी। सत् पुरुषों में सभी दोषों का सर्वथा अभाव और शुभ गुणों का भली भाँति समावेश है। और रहेगा। अभी भी महत्पुरुषों का सर्वथा अभाव नहीं है। यत्र तत्र सर्वत्र गुप्त प्रगट रूप में विद्यमान हैं। समाज की कमी है कि अन्वेषण किये बिना ही बाहरी वेष बनाने वाले; आडम्बरियों के चक्कर में फसकर बाद में पछताते हैं।

प्रश्न—बाहरी वेषधारी किसे कहते हैं ? क्या बाहर से छापादि न लगाये जायें ?

उत्तर—बाहरी वेषधारी वह व्यक्ति हैं, जो भगवत् प्रीत्यर्थ कण्ठी, तिलक, माला और भगवान के आयुध धनुष बाण शंख चक्रादिकों की छाप न लगाकर केवल समाज को दिखाने के लिये ही धारण करते हैं। ताकि हमें भी समाज, भक्त या सन्त समझे हमारी पूजा करे। हम मन माने सुख स्वाद भी भोगते रहें, और लोक में प्रतिष्ठा भी प्राप्त करें। किन्तु ध्यान रहे कि ऐसे बनावटी लोगों का भेद जब तक छिपा रहे तभी तक कुशल है। प्रगट होने पर तो प्राणों का संकट आजाता है। यथा—'रावण बनावटी यती' (सन्यासी) बनकर श्रीजानकी हरण किया। भेद प्रगट होने पर सपरिवार काल के गाल में स्थान पाया। और कालनेमि ने भी मुनि का वेष बनाया था। परिणामतः वह भी भेद खुलने पर श्रीहनुमानजी के हाथ से मारा गया। इसी प्रकार जो व्यक्ति किसी को ठगने के लिये साधु वेष बनाता है। उसे दुर्दशा भोगनी ही पड़ती है। और यदि कोई सज्जन स्वभाव वाला व्यक्ति कंठी तिलक और भगवत् आयुधों की छाप लगाकर सादर सप्रेम भगवान श्रीहरि का स्मरण करता है। तो वह प्रभु की कृपा प्राप्त करता है। अस्तु प्रभु की कृपा प्राप्ति के लिए तिलक, कन्ठी, माला, छाप धारण करना अनिवार्य है।

प्रश्न—यदि कन्ठी, तिलक, माला, छाप, न भी लगावें; प्रेम पूर्वक भगवान का भजन करें। तो क्या भगवान की प्राप्ती न होगी। या भगवान प्रसन्न न होंगे ?

उत्तर—यद्यपि करुणा सागर प्रभु प्रेम के ही भूखे हैं। बाहरी दिखावा नहीं चाहते हैं। तथापि विचारणीय बात यह है कि—कोई पति सेवा परायण युवती प्रेम पूर्वक पति की सभी सेवा करे। किन्तु सौभाग्य सूचक चिन्हों को धारण न करे। तो उसके पति को विशेष प्रसन्नता नहीं होती है। वह अपने मन में सोचता है कि मेरे जीते जी यह विधवाओं जैसे रहती है। अस्तु यह चाहती है कि मैं मर जाऊँ। अन्य व्यक्ति भी सौभाग्य सूचक चिन्ह न धारण करने के कारण विधवा ही समझते हैं। इसलिये पति की प्रसन्नता प्राप्त करने में पति की सेवा भी करना चाहिए। क्योंकि सेवा न करने पर चाहे जितना भी सौभाग्य के चिन्हों को धारण किया करे। पति की प्रसन्नता नहीं होती है। तब निर्णय यह है कि सौभाग्य चिन्ह तथा पति की सेवा दोनों ही परम अपेक्षित हैं। किसी की उपेक्षा करना उचित नहीं है। उसी प्रकार कण्ठी, तिलक, मुद्रा छाप लगाना और प्रेम पूर्वक भजन करना दोनों कार्य अनिवार्य हैं। केवल मुद्रादिकों को धारण करने से बिना भजन के भगवान प्रसन्न नहीं होते, और भक्तों का वेष तिलक माला कण्ठी छाप न लगाने से भगवत भक्तों की अनुकम्पा प्राप्त न होने के कारण, भगवान को भी प्रियता नहीं होती। विचार की बात तो यह है कि प्रभु की प्रियता चाहने

वाले व्यक्ति अपनी हठ रूपी दुराग्रह को साथ क्यों ढोते हैं। कि हमें यह कार्य प्रिय नहीं, भगवान प्रसन्न हों या अप्रसन्न हम ऐसा तो कर हीं नहीं सकते। अथवा हमें यही कार्य प्रिय है ऐसा ही करेंगे। भक्त तो वह है जो भगवान का विधान माने। अपना विधान भगवान पर लगाना यह तो भक्त होने के लक्षण नहीं हैं। अस्तु भगवान की आज्ञा स्वरूप सतशास्त्रों के कथनानुसार ही भक्त को भक्ति करनी चाहिये। अपनी हठ करना उचित नहीं है।

प्रश्न—तिलक, माला, कण्ठी, छाप भक्त कितने समय से लगाते हैं।

उत्तर—सृष्टि के पूर्व भगवत् धाम में नित्य पार्षद भगवान् की सेवा करने वाले सभी तिलक माला छाप लगाते हैं। सगुण स्वरूपों के सभी उपासनाओं की परम्परायें उन्हीं नित्य पार्षदों द्वारा प्रचलित हैं। आजकल कुछ अनभिज्ञ व्यक्ति ऐसा प्रचार कर रहे हैं कि श्री वैष्णव सम्प्रदाय अभी दो हजार वर्षों के अन्तर्गत बनी है। उनका कोई दोष भी नहीं है। उन विचारों के पास शास्त्रावलोकन के लिये विद्या रूप आँख और अवकाश ही नहीं है। सद्ग्रन्थों को विना देखे ही कल्पना करके लिखने वाले व्यक्ति विपरीत लेख लिखते हैं।

प्रश्न—तिलक, कंठी, माला, छाप तो बाहरी दिखावा है इसके विना क्या हानि। हृदय में प्रेम होना चाहिये। अपनी भावना शुद्ध रखना चाहिये।

उत्तर—वर्तमान युग में भारत वर्ष में कांग्रेस पार्टी द्वारा राज्य सत्ता चल रही है। सभी कांग्रेसी सदस्य खद्दर की धोती, कमीज, टोपी पहिनते हैं। त्रिरंगा झंडा का सम्मान करते हैं यदि कोई नया व्यक्ति कांग्रेस पार्टी का सदस्य बनना चाहे। किन्तु यह कहे कि भाई हम कांग्रेस पार्टी के सदस्य तो बनेंगे। परन्तु यह खद्दर की धोती, कमीज, टोपी, पहिरना हमें अच्छा नहीं लगता, और यह झंडा को तो बाँस में कपड़ा रंग के लगा दिया है। इसे नतमस्तक होने से कुछ लाभ नहीं है। हम झंडा को शिर न झुकायेंगे। अब सोचिये। क्या उस व्यक्ति से हमारी कांग्रेस सरकार के सदस्य प्रेम करेंगे। सभी कहेंगे कि ये तो राज और देश द्रोही है उसके मन में कितना भी प्रेम क्यों न हो, उसे कौन देखेगा। पार्टी का प्रिय बनने के लिये, पार्टी के प्रति प्रेम भी चाहिये। और बाहरी चिन्ह खद्दर के वस्त्र पहिरना भी होगा, तथा झंडा का सम्मान भी करना अनिवार्य होगा। हृदय के प्रेम से काम न चलेगा। इसी प्रकार भगवत् पार्षदों का बनाया हुआ यह विधान कि, कंठी, तिलक छाप भी लगाना होगा, और हृदय में प्रेम भी परमावश्यक है। अस्तु तर्क छोड़कर शास्त्राज्ञानुसार ही भजन करना परम श्रेयकर होगा।

प्रश्न—ऊपर कहा गया कि श्री गुरुदेवजी को भगवान् का स्वरूप मानना चाहिये या भगवान से भी अधिक भाव रखना चाहिये। ऐसा क्यों॥

उत्तर—श्री गुरुतत्त्व भगवान् की कृपाशक्ति ही जीवों के कल्याण करने के लिए,

मूर्तिमान होकर प्राप्त होती है। वह शक्ति तत्त्व सर्वव्यापक है। अनेकानेक रूपों से प्राप्त होती है। सोचिये तो सही कि श्रीगुरुदेव जी ने कितना उपकार किया है। जीव संसारी अनित्य वस्तु व्यक्ति और मायिक सम्बन्धों में बँधा था। उसे उन सब बन्धनों से मुक्त करके, हमारे प्राणाधार परम प्रियतम प्रभु से हमारा सम्बन्ध स्थापित कराया। कृपा-सागर श्री हरि का शील स्वभाव, उदारता, भक्तवत्सलता, सुहृदता, सौलभ्यता एवं हम पाँवरों पर भी अपनत्व प्रदर्शन कराया है। विशेष बात तो यह है कि प्रत्यक्ष में भगवान कृपा तब करते हैं। जब श्री गुरुदेव अपने उपदेशामृत से हमारे अज्ञान तिमिर को नष्ट करके हृदय में ज्ञान रूपी दिव्य प्रकाश करके भजन भावना भर देते हैं। भगवान का वचन है कि—**मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।** और दुष्टात्माओं को कहा है कि—**मोरे सन्मुख आव कि सोई।** परन्तु श्री गुरुदेव तो महान् से महान पापी, पाखण्डी, भ्रष्टाचारी, दुराचारी व्यक्तियों पर भी कृपा करके उपदेश देकर प्रभु के अनुकूल करते हैं। भगवान हैं। उनका भजन किये बिना संसार चक्र नहीं छूटेगा। यह बात भी तो गुरुकृपा से ही प्राप्त होती है। भगवान् चन्दन का वृक्ष और सन्त रूपी गुरु वायु हैं। वायु के द्वारा ही चन्दन की सुगन्ध सर्वत्र सचारित होती है। भगवान समुद्र और संतरूपी गुरु बादल हैं। सागर से जगत को विशेष लाभ नहीं। क्योंकि उसका जल खारा होता है। बादलरूपी संतगुरु समुद्र रूप प्रभु के दिव्य गुण, यश, रूपी मधुर जल की वृष्टि करके समस्त जगत को लाभान्वित करते हैं। इसलिये श्री गुरुदेवजी भगवान से भी बढ़कर मानने योग्य हैं।

श्री गुरुतत्त्व की महिमा अपार है। पूर्णरूप से आज तक कोई भी नहीं कह पाया है। फिर भी सभी ने स्वमति अनुसार कही ही है। तदनुसार हमारे परम श्रध्येय। मानस तत्त्वान्वेषी पं० श्री रामकुमारदास जी रामायणी श्री मणिपर्वत श्रीअयोध्याजी निवासी महाराज द्वारा लिखित श्री गुरु महिमा का प्रेमी पाठक रसास्वादन करें।

श्री गुरुचरणकमलवा वन्दौं सोइ। जासु कृपा लवलेसहि शुचिमति होइ॥

श्री गुरुदेवजी की महिमा भला कौन कह सकता है। जबकि—**महिमा गुरु की नहिं हरिहू बखानि सकैं०।** वेद की आज्ञा है कि—**इदं नमः ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पथि-कृद्भ्यः** (अथर्ववेद काण्ड १२ सूक्त २।२ ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १४ मन्त्र १५) अपनी शिक्षा दीक्षा से मोक्षमार्ग भगवत्प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाले पूर्वजों-पूर्व ऋषियों-भगवन्मन्त्र प्रदाता पूर्वाचार्यों को प्रथम इदं नमः-बारम्बार नमस्कार है। इसी को स्पष्ट करते हुये श्री रामचरित मानस में महर्षि श्री वाल्मीकिजी ने श्रीरामजी से ही कहा है कि-

तुमते अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकलभाव सेवइ सनमानी॥

[अयोध्या कां० दो० १२६ पं० ८] क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित

यह अधम शरीरा ॥ कि० कां० दो० ११ पं० ४ ॥ इस अधम शरीर को श्रीगुरुदेवजी पंचसंस्कारों से संस्कृत करके पवित्र करके भगवत्सेवा योग्य बना देते हैं। जैसा कि वेद का कथन है ॥ यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवामर्चयति द्वयेन। मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनुमृक्षीष्ट तन्वंदुरुक्तैः ॥ (ऋ० १।१४७।४) अर्थ—अग्ने ?--हे अग्रणी परमात्मन् ! अररिवान्-दूसरों के दानादि सत्कार्यों में विघ्न डालने वाला। अघायुः—पाप परायणप्राणी। नः-हम (सन्मार्गियों का) द्वयेन-तन और मन दोनों से। मर्चयति-तिरस्कार करता है, अर्थात् हमें नीचा दिखाने में सचेष्ट रहता है। अस्मै—(षष्ठ्यर्थे चतुर्थी) इसको निन्द्यकार्यों से हटाकर सन्मार्ग में लगाने वाले। मन्त्रः गुरुः अस्तु—'मन्त्र प्रदाता गुरु जी। दुरुक्तैः-दुर्जनों से महापुरुषों को निन्दा युक्त दुष्ट वाक्यों से दूषित। तन्वम्-इसके शरीर को। अनुमृक्षीष्ट-अनुमार्जन अर्थात् पावन करें ॥

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आनमन्ति। इमे शंसं वनुष्यतो निपन्ति गुरु द्वेषो अररुपेदधन्ति ॥ (यजुर्वेदीय मैत्राणीय संहिता काण्ड ४ प्रपाठक १४ अनुवाक १८ मं० ५ ऋ० ७।५६।१६ तै० ब्रा० २।८।५।६)

इमे गुरुः--ये श्री गुरुदेव जी, समस्त लोक कल्याण के लिये। मरुतः-पवन के समान सतत भ्रमण और पालन करते हैं। वे तुरम्-सेवा में शीघ्रकारी अर्थात् निरन्तर गुरु-सेवा में तत्पर शिष्य को। रामयन्ति-श्रीराम जी में रमण कराते हैं। जैसे माता पिता बालक को विविध प्रकार के खिलौनों से प्रसन्न किया करते हैं। वैसे विविध आवश्यक भोग सामग्री देकर शिष्य के शरीर को सुपुष्ट, प्रसन्न और आत्म परमात्म तत्त्व समझा-कर शिष्य के मन को ब्रह्म-श्रीरामजी में लगाते हैं। इमे-ये श्री गुरु जी। सहः-अपने भजनबल दिव्य शक्ति से। सहसः-बलवान घमंडी, जगत पीड़ाकारी, चोर दस्यु आदि हिंसा मनुष्यों को। आनमन्ति-झुका देते हैं। अर्थात् दिव्य दिव्य प्रभाव से कुमार्गगामी प्राणि वर्ग को भी सन्मार्ग की ओर आकृष्ट करते हैं। (सन्त नानकशाह का कौड़े राक्षस को, पीपाजी का सिंह को, चैतन्य महाप्रभु का जगाई मधाई को, गौतमबुद्ध का अंगुलिमाल डाकू को प्रभु भक्त बनाना जगत प्रसिद्ध है।) इतना ही नहीं ॥ इमे शंसम्-ये श्री गुरु जी अपने प्रशंसक शिष्य को अर्थात् स्तुति नमस्कार आदि द्वारा गुरु पूजा में निरत साधक को। वनुष्यतः-हिंसक से वाह्य क्रूर प्रकृति सिंह मनुष्यादि शत्रुओं से। निपतन्ति-निरन्तर रक्षा भी किया करते हैं। यदि कोई व्यक्ति गुरु सेवा से विमुख है, वह किसी प्रकार भी गुरु सेवा में अपने तन मन धन वचन आदि साधनों का प्रयोग नहीं करता है। तथा घमंड में चूर रहता है। भक्ति शास्त्र सम्मत गुरु चरणों में आत्म-निवेदन का मार्ग ग्रहण नहीं करता तो ॥ अररुषे-उस आत्म निवेदन न करने वाले ढोंगी शिष्य के लिये। द्वेषः-अप्रिय अनिष्ट को भी यह श्री गुरुदेवजी दधन्ति धारण करते

हैं। अर्थात् कठोर दण्ड के द्वारा शिष्य को "चमत्कार को नमस्कार" वाली युक्ति अनुसार सीधे रास्ते पर लाया करते हैं।

न तं तिग्मंचन त्यजो न द्रासदभितं गुरु। यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसोव ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः ॥ (ऋ० ८।४७।७)

आदित्यासः—सूर्य के समान प्रतापी। सप्रथः—परोपकृति योग—चमत्कारादि से लब्ध-रव्याति की श्री गुरुदेवजी। अनेहसः—निष्पाप सरल हृदय से आप। यस्मै—जिस प्रिय शिष्य के लिये। शर्म—सुख अर्थात् लौकिक सुख भोग एवं मोक्ष को। अराध्वम्—सम्पादन करें। तम् अभिगुरुम्—उस गुरु आज्ञाकारी गुरुभक्त शिष्य को। तिग्मंचन—तीक्ष्ण स्वभाव वालों को भी। त्यजः न द्रासद्—क्रोध बुरी तरह नहीं पकड़ता। (द्राकुत्सायांगतौ) अर्थात् उसके समीप भूलकर भी नहीं फटकता। केवल क्रोध ही नहीं, क्रोध का कारण काम और काम की अवान्तर जाति लोभ और उनके सहचारी मोह मद मत्सर भी। तम् न द्रासत्—उस साधक को आक्रान्त नहीं कर पाते। अतएव ॥ वः ऊतयः-आपके संरक्षण अर्थात् शिष्य रक्षा के प्रकार। सुऊतयः—सुन्दर संरक्षण हैं। वः ऊतयः—यह द्विरुक्ति पूर्व उक्ति के लिये की गई है। श्रुति है अग्नि की उपासना देवोपासना की प्रवेशिका है। और विष्णोपासना देवोपासना विश्वविद्यालय की अन्तिम उपाधि (डिग्री) है। क्योंकि—

अग्निर्वै देवानामवम्मे, विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वाः अन्यादेवाः ॥

(ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका १ अ० १ मं० १)

अग्नि देवताओं में—अवम्=छोटा है, और विष्णु परम=श्रेष्ठ हैं। इसके बीच और सब देवता हैं। इसी की सुपुष्ट व्याख्या करते हुये पौराणिकों ने कहा है कि—

अन्यादिषु हि या भक्तिर्गाणपत्ये समाहितः। तुष्टे गणपतो यस्य भक्तिर्भवति भास्करे ॥ प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शक्ति के। शक्तेस्तुष्टे ततस्तस्यभक्ति-र्भवतिशांभवे ॥ तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे ॥ + + + + + +
ततो भुक्तिं च मुक्तिं च सम्प्राप्नोति द्विजोत्तमः ॥ (ब्र० पु०)

शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति रामपद होई ॥

(रा० च० मा० उ० दो० १०६) संग्रह ग्रन्थों में संग्रहीत है कि—

सात्विकैः सेव्यते विष्णुस्तामसैः प्रमथाधिपः। राजसैः सेव्यते ब्रह्मा संकीर्णैस्तु सरस्वती॥

(ब्र० पु०)

हिरण्यगर्भोरजसा शंकरस्तमसावृतः। सत्वेन सर्वगोविष्णुः सर्वात्मा सदसन्मयः॥ लिं०पु०

वन्धकः भवपाशेन भवपाशाच्च मोचकः। कैवल्यदा परं ब्रह्म विष्णुरेव सनातनः ॥
(स्कं० पु०)

वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्रः फलाधिकः ॥ (प० पु०)

निगमागमने यह निश्चय किया कि सर्वश्रेष्ठ श्रीवैष्णवी दीक्षा है। और असंख्य वैष्णव मन्त्रों में श्रीराम मन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ है। इस श्रीराम मन्त्र से अधिक तो क्या इसके तुल्य भी कोई मन्त्र नहीं है। जाके सम अतिशय नहिं कोई। राम सकल नामन ते अधिका। राका रजनी भक्ति तव राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडगण विमल बसहिं भगत उर व्योम ॥ (रा० च० मा० अ० कां० ४२ दो०) परन्तु वह श्रीराम मन्त्र (या कोई भी मन्त्र) योग्य गुरु से प्राप्त होने पर ही पूर्ण फल प्रद होता है। गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि शंकर सम होई ॥ (उ० कां० ६३ दो० पं० ५) योग्य गुरु के सम्बन्ध में औपनिषदिक श्रुति का निर्देश है कि शास्त्रज्ञ और भगवन्निष्ठ को ही गुरु करना चाहिये।

सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः। श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

जो भगवत्प्रेमी नहीं है, कोरा विद्वान् मात्र है, तो वह शिष्य को नास्तिक बनाकर अपने साथ उसका भी लोक-परलोक बिगाड़ेगा। और ब्रह्मनिष्ठ-भगवन्निष्ठ भजनानन्दी होते हुये भी यदि श्रोत्रिय=शास्त्रज्ञ विद्वान नहीं है, तो शिष्य की शंकाओं का समाधान नहीं कर सकता है, क्योंकि---

भिन्ननावश्रितः स्तब्धो यथा पारं न गच्छति। ज्ञान हीनं गुरुं प्राप्य कुतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥

जैसे--स्तब्ध-अर्थात् मूर्ख व्यक्ति टूटी-फूटी नाव पर चढ़कर नदी पार नहीं कर सकता। वैसे ही ज्ञान विहीन (रहित) गुरु करके कोई मोक्ष नहीं पा सकता, और सर्वशास्त्रज्ञ होते हुये भी गुरु का भगवत् भक्त होना अनिवार्य है----

महाकुल प्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः ॥
(नारद पंचरात्र)

परमोत्तम कुल में उत्पन्न, सम्पूर्ण यज्ञों में दीक्षित और वेदों की हजारों शाखाओं का अध्यन करने वाला होते हुये भी यदि वह वैष्णव नहीं है, तो उसे गुरु नहीं करना चाहिये। आज तो — पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव। पुत्रोत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्ति साधने ॥ भा० माहात्म्य अ० १--७५ ॥ अर्थात् गृहस्थ पंडितगण स्त्रियों के साथ भैंसों की तरह रमण करते हैं। वे सन्तान पैदा करने में तो परम कुशल हैं, परन्तु मुक्ति साधन में सर्वथा अकुशल हैं। इस समय ॥ इसी लिये गीतामें आदेश है कि—

दशकर्म व्रतबन्धं विवाहं श्राद्धतीर्थकम् । पद् स्थाने गुरुर्विप्रा दीक्षायां वैष्णवोगुरुः ॥

॥ ना० गी० ८ ॥ यहाँ वैष्णव से विरक्त वैष्णव का तात्पर्य है । जैसा कि अगले श्लोक में सुस्पष्ट है कि—

"पाषाणस्य यथा नौका न तरति न तारयति । तथा गृहीगुरुश्चैव न तरति न तारयति" ॥

॥ ना० गी० ६ ॥ अतः सभी विषयों से परम विरक्त, और भगवन्निष्ठ, श्रुति शास्त्रवेत्ता, पौराणिक, साम्प्रदायी श्री वैष्णव विद्वान् को गुरु बनाना चाहिये । जैसा कि पुराण एवं श्रुति का आदेश है—

"तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् । शाब्देपरे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥

[भा० ११-३-२१] इसलिये जो परम कल्याण—मोक्षमार्ग का जिज्ञासु हो उसे ऐसे गुरुदेव की शरण में जाना चाहिये जो शब्द—वेद शास्त्र के तत्त्वज्ञ हों और परब्रह्म में पूर्ण निष्ठा- भक्ति हो । एवं उनका चित्त शान्त हो, व्यवहार के प्रपंच में विशेष प्रवृत्त न हों । इसी से औपनिषदिक श्रुति कहती है कि—

तद्दर्शनं सदाचार्यमूलम् । आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः । मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः ॥ गुरुभक्तिसमायुक्ताः पुराणज्ञो विशेषतः । एवं लक्षण सम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते" ॥

[ग्रद्वयतारकोपनिषत् ८६। द्वयोप० २, १] भगवद्दर्शन के मूल कारण आचार्य श्री गुरुदेव हैं । स्वयं आचरण करने वाला अर्थात् सदाचारी वेदज्ञ. विरक्त वैष्णव. मत्सररहित, मंत्रार्थज्ञाता, मन्त्रजापक, सदापरम्परागत प्राप्त मन्त्र का आश्रयण करने वाला हो, इस प्रकार के लक्षणों से युक्त विरक्त गुरु होना चाहिये ।

नोट—इस प्रसंग में उन्हीं गृहस्थों की चर्चा है जो भगवान् श्रीहरि को विस्मृत करके संसाराशक्त, मोहाशक्त हैं । जो सद्गृहस्थ भगवत्भक्त हैं उनकी निन्दा नहीं है । भगवत् विमुखों को तो श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि—'रामविमुख लहि विधि समदेही । कवि कोविद न प्रशंसहिं तेही" ॥ तब साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या है । श्री गुरुदेव की महिमा सम्यक् प्रकार कहना तो किसी के भी वश की बात नहीं है । तथापि पूज्यचरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने श्री रामचरित मानसमें लिखा है कि-"बन्दौं गुरुपदकंज कृपासिन्धु नररूपहरि" ॥ यहाँ पर 'नरहरि'

कहकर श्री गुरुदेव जी को साक्षात् ब्रह्म जनाया है । शत्शिष्य को चाहिये कि श्रीराम-मन्त्र प्रदाता श्री गुरुदेव को साक्षात् ब्रह्म मानकर सेवा करें । श्रीगुरुपदरज को प्रसूती, वशकरणी, और मलहरणी कहकर वताया कि श्री गुरुदेव जी ब्रह्म हैं । और उनकी चरणरज आद्याशक्ति है । जो साधक के हृदय में सद्वृत्तियों भगवत् भक्ति] की प्रसूती (उत्पत्ति) पालन और असद्वृत्तियों (मद, मोह, मत्सरादि) की निवारक है । प्रसूती से उत्पत्ति किया, वशकरणी से पालन किया, मलहरणी से संहार किया को- सूचित किया । समस्त भवरोग की औषधि के रूप में खाना चाहिये । यथा— "अमिय मूरियम चूरन चारू" ॥ कारण यह है कि-- 'सकल सुमंगलमूलजग गुरुपद पंकज रेणु ॥ ध्यान करने से जो--"काई विषय मुकुर मनलागी" वह विषय रूपी काई दूर हो जाती है । मन स्वच्छ हो जाता है । अतएव- 'जन मन मंजु मुकुर मल हरनी" । श्री गुरुचरण सरोजरज निजमन मुकुर सुधारि ॥ पुनः--"सुकृत शम्भुतन विमल विभूती ॥ अस्तु स्थूल एवं सुकृत दोनों शरीरों में लगाना चाहिये । तन्त्रग्रन्थों में मनुष्य, देवता, पशु. प्रेतादिकों को वश में करने के लिये जो प्रयोग लिखे गये हैं। उन्हें वशीकरण प्रयोग कहा जाता है और उनमें अनेक प्रकार की विधियाँ करनी पड़ती हैं । किन्तु उन सभी प्रयोगों में कोई भी ऐसा प्रयोग नहीं है कि जिस एक ही प्रयोग से सभी गुण वश में हो जायें । परन्तु श्री गुरुपद रज ही एक ऐसा है कि-' किये तिलक गुणगण वश करनी" ॥ एक ही वैभव की प्राप्ति अनेक उपायों से होने पर भी वह एकरस नहीं रहता है । परन्तु श्री गुरुपद रज को श्रद्धा समेत शिर पर धारण करने से समस्त वैभव सर्वदा उसके आधीन रहते हैं । यथा--

"जे गुरुचरण रेणु शिर धरहीं । ते जन सकल विभव वश करहीं" ॥

॥ अयो० कां० दो० ३ ॥ अतएव श्री गुरुपद रज को सर्वदा सादर सप्रेम शिर पर धारण करना चाहिये । श्री गुरु पद रज एक दिव्य अंजन है, इसका नाम नयनामिय अंजन है । इसे आभ्यन्तरिक नेत्र ज्ञान वैराग्य में लगाने से उन्हें अत्यन्त निर्मल कर देती है ।

"गुरुपद रज मृदुमंजुल अंजन नयनअमिय दृग दोष निभंजन" ॥

जिसे लगाने से--"तेहि करि विमल विवेक विलोचन" ॥ चक्रवर्ति श्र दशरथ जी श्री वशिष्ठ जी से कहते हैं कि--"जे गुरुचरण रेणु शिर धरहीं । ते जन सकल विभव वश करहीं ॥ मोहि सम यह अनुभवेउ न दूजे । सब पायों रज पावन पूजे ॥ ॥ रा० च० मा० अयो० कां० दो० ३ पं० ५, ६ ॥

श्री गुरु पद रज अनुरागी वड़भागियों की प्रशंसा लोक, वेदों, वैदिक साहित्यों में भी मुक्त कण्ठ से की जाती है। सकल सुमंगल मूल जग, गुरुपद पंकज रेणु। और जे गुरु पद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहु वेदहु वड़भागी ॥ अयो० कां० १५६ ॥ अस्तु श्री गुरुपद रज पर अपना सारा छरभार कार्य रखकर चलने वाले भक्त कभी भी असफल नहीं होते ॥ "गुरु पद रजहिं लाग छर भारू" ॥ विनय पत्रिका में सारा छरभार का उत्तरदायित्व परमात्मा के ऊपर रखा है ॥ यथा—"यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहै हौं" (वि० पत्रि० पद १०४) ॥ श्री गुरुपद रज से मारन, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन इत्यादि भी हो सकता है। यथा—"समन सकल भवरुज परिवारू यह मारण है ॥ मोहन—शारीरिक शोभा अति वृहत् मोहनास्त्र है, और श्री गुरुपदरज "सुकृत शम्भुतन विमल विभूती ॥ उच्चाटन—"जन मन मंजु मुकुर मल हरणी ॥ वशीकरण—"किये तिलक गुण गण वश करणी" ॥ आकर्षण—"यथा सुअंजन आँजि-दृग साधक सिद्ध सुजान। कौतुक देखहिं शैल वन भूतल भूरि निधान" ॥ भगवान् श्री राम जी ने श्री गुरुपद रज की निर्मायिक सेवा को अपनी सर्वश्रेष्ठ नवधाभक्ति में तीसरी भक्ति वताई है ॥ यथा—"गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान" (अ० कां० दो० ३५) ॥

नोट—इस तीसरी भक्ति का अधिकारी वही स्त्री या पुरुष हो सकता हैं जिसने गुरु वरण किया हो। जिसने गुरु वरण नहीं किया है। केवल वन्दे कृष्णं जगद्गुरुं से ही कार्य चलाया है, वह सज्जन इस तीसरी भक्ति श्री गुरुपद सेवा से सर्वदा वंचित ही रहेंगे। अस्तु तर्क त्याग सभी स्त्री पुरुषों को वीतराग, त्यागी, विरक्त महाभागवतों से मन्त्रदीक्षा प्राप्त करके श्री गुरु सेवा का परम लाभ से लाभान्वित होना चाहिये। ब्राह्मणों के पास तो ब्रह्मगायत्री है ही जो सब मंत्रों से श्रेष्ठ है, तब अन्य मंत्र की दीक्षा की आवश्यकता नहीं कहने वाले सज्जन ध्यान दें। गायत्री केवल ब्राह्मणों के ही पास होती, और किसी के पास न रहती तव तो यह किसी अंश में ठीक भी था। परन्तु गायत्री तो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य द्विजाति कहलाने वाले तीनों के पास साधिकार प्राप्त है। तब युक्त शंका ठीक नहीं है। श्री रामचरित मानस में देखिये तो पता लगेगा कि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी के सिद्धान्त में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ हैं। यथा—पूजिय विप्र शील गुण हीना। अ० कां० दो० ३४ ॥ पुनः उ० कां० श्री रामजी ने भी श्री कागभुसुण्डी जी से कहा है कि—

"मम माया संभव संसारा। जीव चराचर विविधि प्रकारा" ॥

यद्यपि, "सव मम प्रिय सव मम उपजाये। सव ते अधिक मनुज मोहिं भाये"॥

पुनः मनुष्यों में भी—"द्विज प्रिय हैं । द्विज में श्रुतिधारी प्रिय हैं ॥ यद्यपि द्विजाति शब्द का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य परम्परागत माना जाता है ।। तथापि जहाँ कहीं केवल द्विज शब्द का प्रयोग होता है वहाँ पर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तीनों का बोधक न हो करके ब्राह्मणों का ही बोधक होता है । ऐसी ही रूढ़ी है । श्री रामचरित मानस में जहाँ भी द्विज शब्द लिखा गया है, वहाँ द्विज शब्द को केवल ब्राह्मणों में ही प्रयोग किया है । अस्तु यह निश्चय हुआ कि सब मनुष्यों में द्विज (ब्राह्मण) श्रेष्ठ हैं । अन्य लोगों की तो बात ही क्या । भगवान् श्री राम जी स्वयं ही शिक्षार्थ ब्राह्मणों की पूजा प्रतिष्ठा करते थे । यथा—"विप्र बृन्द बन्दे दोउ भाई । बा० कां० दो० ३०८ पुनः—"सकल द्विजन मिलि नायो माथा । धर्म धुन्धर रघुकुल नाथा ।। उ० कां दो० ४ ॥ श्री राम जी ने परशुराम जी से कहा था कि—"सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरे कुल इनपर सुराई ॥ बा० कां० दो० २७३ भाव यह है कि—देवता, ब्राह्मण, भगवत्भक्त, और गाय को हमारे पूर्वज पूज्य मानते आये हैं, इसलिये इन चारों पर शूरता वीरता नहीं करते । इन चारों को मार देने पर पाप लगेगा, और हारने पर अपकीरति होगी । अस्तु—मारत हूँ पा परिअ तुम्हारे । आप हमें मारेंगे तो भी हम आपसे युद्ध न धरके आपके चरणों में ही पड़ेंगे ॥ पुनः—"विप्र वंश की अस प्रभुताई । अभय होय जो तुमहिं डराई" ॥ बा० कां० दो० २८४ ॥ और विनय पत्रिका में तो कहा कि—"मम मूरति महिदेव मई हैं" ॥ ब्राह्मणों को अपना स्वरूप बतलाया है । और श्री गुरुदेव जी के लिये तो कहा है कि—"तुम ते अधिक गुरुहिं जियजानी । सकल भाय सेवइ सनमानी" ॥ अयो० कां० दो० १२९ ॥ श्री वाल्मीकि जी ने श्री राम जी से कहा कि श्री गुरुदेव जी को आप से भी अधिक मानकर सम्यक् प्रकार भावना पूर्वक सनमान करते हुये सेवा करे ॥

अस्तु श्री गुरु का स्थान ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है ।। दूसरी बात यह भी है कि—ब्राह्मणों को अन्य मनुष्यों की भाँति व्यवहारिक क्रिया कलाप सीखना न पड़ता, बिना सीखे ही जागतिक सभी व्यापार करते, तब तो भले ही ठीक था, किन्तु जब संसार की सभी बातें ब्राह्मणों को भी सभी मनुष्यों की ही भाँति सीखनी पड़ती हैं, तब भगवद्भक्ति भजन करना बिना सीखे कैसे आ जायेगा । जिससे भजन करना सीखेंगे वही गुरु कहलायेगा । और यदि चातुर्यता पूर्वक किसी से भजन करना सीख लें, और उसे गुरु न मानेंगे, तो कृतघ्नता का महान दोष लगेगा ।

यद्यपि गीताप्रेस गोरखपुर के कार्यकर्ताओं ने सद्ग्रन्थों का प्रकाशन करके स्वल्प-मूल्य में देकर, कल्याण पत्रिका में विविध विद्वानों द्वारा महर्षियों के अमृतमय सैद्धान्तिक उपदेशामृत का वितरण करके सनातन हिन्दूधर्म को बहुत उत्कर्ष बढ़ाया। अनेकानेक चेतनों को श्री हरि की ओर आकृष्ट किया॥ भारत का ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी कल्याण पत्रिका के द्वारा सुधार करने का भारी प्रयास किया। बहुमात्रा में व्यक्तियों को लाभ हुआ। किन्तु अत्यन्त खेद के साथ व्यक्त करना पड़ रहा है कि कुछ कार्य ऐसे हठ पूर्वक भी किये गये हैं, जिनसे समाज की प्रगति का अवरोध होना स्वाभाविक है। सेठ जयदयाल गोयन्दका जी एवं श्री हनुमान पोद्दार भगवत्भक्त तथा विचारक व्यक्ति थे। फिर भी नारी अंक और नारी धर्म नामक पुस्तक में प्रमादपूर्वक प्रकाशन हुआ। नारी अंक के पृ० २१३ से २१५ तक पतिरेव गुरुः स्त्रीणां, शीर्षक के लेखक—पं० श्री जानकीनाथ जी शर्मा ने नारी दीक्षा को विषय बनाकर बड़े ही सुदृढ़ता के साथ लिखा है कि—शास्त्रों में नारी दीक्षा का बिलकुल विधान एवं प्रमाण नहीं है। इतना ही नहीं प्रवाह में प्रवाहित होकर लिख डाला कि—दीक्षा देने वाले सर्वथा शास्त्रानभिज्ञ हैं। इनके पास केवल बाबा वाक्यं प्रमाणम् के अतिरिक्त शास्त्रीय आधार की शून्यता है। स्वयं ही प्रश्नोत्तर करके सभी साम्प्रदायों की परम्परायें अनर्गल—अप्रमाणिक तथा अमान्य मानी। यद्यपि श्री जानकीनाथ शर्मा जी व्यावहारिक भाषा में कहने को विद्वान हैं, तथापि बुद्धि के दरिद्र जैसे प्रतीत होते हैं। शास्त्रीय सिद्धान्त है कि विद्याददाति बिनयम्॥ अत्यन्त कटुतापूर्ण लेख लिखना विद्वान को उचित नहीं॥ क्यों कि मनु वाक्य हैं कि—"सत्यं ब्रूयाति प्रियं ब्रूयाति न ब्रूयाति सत्यमप्रियं॥ सर्व प्रथम बात तो यही है कि सन्शास्त्रों (आप्त पुरुषों के वचनों) में कई स्थलों पर नारी दीक्षा का सुस्पष्ट वर्णन है ही। साथ ही साथ विचार ये भी करना अनिवार्य है कि—सभी सम्प्रदायें महान विरक्त भगवत्भक्त, विषय से सर्वथा दूर रह कर आत्म परमात्म चिन्तक मनीषियों द्वारा प्रचारित प्रसारित हैं। शर्माजी के कथनानुसार यदि यह मान लिया जाये कि स्त्रियों को मन्त्र दीक्षा देने वाले व्यक्ति शास्त्रानभिज्ञ थे। तब सभी साम्प्रदायाचार्य श्रुति शास्त्रानभिज्ञ सिद्ध हो जायेंगे। परन्तु बात इसके ठीक विलोम है। वह यह कि सभी साम्प्रदायाचार्य श्रुति शास्त्रों के विशिष्ट विज्ञ (जानकार) थे। जगतगुरु आदि श्री शंकराचार्य जी, जगत गुरु श्री रामानुजाचार्य जगत गुरु श्री रामानन्दाचार्य जी ज० गुरु श्री माधवाचार्य जी ज० गुरु श्री निम्बार्काचार्य जी इत्यादि इन महान् पुरुषों को कौन नहीं जानता, इन सभी महात्माओं ने जिज्ञासु

स्त्री पुरुषों को मन्त्र दीक्षा दी है, इतिहास प्रमाण है । पाठक पढ़े ही होंगे, यहाँ पर प्रमाण देने से ग्रन्थ विस्तार हो जायेगा । परम विचारक होते हुये भी सेठ जयदयाल गोयन्दकाजी ने भी शर्माजी की भांति ही कटुतापूर्ण लेखनारी धर्म नामक पुस्तक में लिख कर अपने हृदय का परिचय दिया । यदि ईर्षा द्वेषवाद विवाद और अपनी दुराग्रह (हठ) त्यागकर मानवता (सज्जनता) पूर्वक नारीधर्मनामक पुस्तक के पृ० ३१-३२ के लेख पर विचार किया जाये तो यह मानना ही होगा कि इस लेख को लेखक ने किसी व्यक्ति विशेष से अप्रसन्न होकर अर्थात् भंग के नशे में लिखा है । इसीलिये साधु, महान्त और भक्तों को ठग लिखा पुनः उनको नरकजाना अर्थात् घोर दुर्गति को प्राप्त होना लिखा है । प्रभु विधानवशगोयन्दका जीका तो देहावसान होगया, वचे उनके साथी मित्रवर्ग, उनसे पूछाजाय और यदि वह सत्यतापूर्वक निर्णय दें, तो क्या उन्हें स्वीकार होगा कि सभी साधु महान्त या भक्त पर धन, परदारारत हैं । तब उन्हें मानना ही होगा कि समाज में भले और बुरे सभी प्रकार के व्यक्ति हैं । हाँ यह माना जा सकता है कि कुछ साधु, महान्त, भक्त दुराचरण परायण होंगे । परन्तु ऐसी मान्यता रखना या लेख लिखना कि स्त्रियों को दीक्षा देनेवाले सभी साधु, महान्त, या भक्त ठग हैं वे घोर दुर्गति को प्राप्त होते हैं। यह प्रमाणित करता है कि लेखक बोतल भर मद्य के नशे में चूर होकर पागलपन में भूल से लिखगया । यद्यपि सेठजी भगवत भक्त थे, सन्तों में अपने ढंग की श्रद्धा भी थी। तथापि ऐसा भ्रमपूर्ण लेख क्यों लिखा प्रभुजाने ॥

गीताप्रेस के वर्तमान व्यवस्थापक एवं सम्पादक तथा संचालक विचार करें कि क्या नारीधर्म नामक पुस्तक से नारी समाज का कल्याण होगया है, होरहा है, अथवा भविष्य में होना सम्भव है । यदि सम्भव है, तो गीताप्रेस कार्यालय के व्यवस्थापक एवं संपादक महोदय विवाद या शास्त्रार्थ की बात न सोचकर मानवता के नाते सुहृदता पूर्वक कल्याण पत्रिका में कुछ प्रश्नों का उत्तर आर्षग्रन्थ शास्त्रीय प्रमाणों से प्रमाणित करते हुए छापने का कष्ट उठावें ॥

क्या अन्य युगों में महिलायें मन्त्र दीक्षा लेती थीं या नहीं । यदि अन्य युगों में लेती थीं तो वर्तमान में निषेध क्यों । बिना हरिभजन किये ही क्या स्त्री संसार चक्र से मुक्त हो जायेगी । आज जिस स्त्री का जो पति है वही पूर्व में भी था और भविष्य में रहेगा । यदि पूर्व में अनेक जन्मों की पति सेवा से संसार चक्र न छूटा तो इस जन्म में विना हरिभजन किये केवल पति सेवा से ही जन्म मृत्यु से मुक्त हो जायेगी । क्या कोई जीव किसी जीव का भोग्य या भोक्ता है। है तो शास्त्रीय प्रमाण

लिखे जायें। यदि कोई भी जीव किसी भी जीव का भोग्य या भोक्ता नहीं है। सभी जीवों के एकमात्र भोक्ता ब्रह्म (भगवान श्रीहरि हैं,) और सभी जीव उस ब्रह्म के ही भोग्य हैं, तब केवल पति सेवा से बिना हरि भजन के ही स्त्री की मुक्ति का विधान॥

यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त है कि स्त्री पतिव्रत का सम्यक प्रकार पालन करते हुये, पतिसेवा परायण होकर भगवत् भजन करने पर प्रभु कृपा से मुक्त हो जायेगी। मैं ही क्या कोई भी शास्त्रज्ञ व्यक्ति यह मानने को तैयार न होगा कि—स्त्री पति सेवा से विमुख होकर स्वच्छन्दचारिनी होकर पर पतियों से रति (विषयावृत्ति) करते हुये भजन करने पर प्रभु की कृपा प्राप्त करेगी। तथापि इतनी बात अवश्य ही है कि सम्यक् प्रकार पति सेवा करने पर भी भगवत भजन किये बिना स्वर्ग (इन्द्रादिक लोक) तक ही प्राप्ति हो सकती है। नित्य सच्चिदानन्दमय भगवत् धाम की प्राप्ति तो श्रीगुरु कृपा से प्राप्त उपासना के द्वारा ही सम्भव है अन्य किसी भी साधन से भगवद्धाम की प्राप्ती न होगी॥

सत्यबात तो यह है कि स्त्री को मन बचन कर्म से पति की सेवा करते हुये, भगवान् श्रीहरि की उपासना करनी चाहिए। जन्म मरण का महान दुख भगवन् कृपा से ही छूट सकता है। अन्य साधन सहायक मात्र हैं। स्वयं मुक्ति प्रदान करने में सर्वथा असमर्थ हैं। पतिव्रत पालन और पति सेवा करना ये दोनों कर्म स्त्रियों के धर्म हैं। धर्म का फल लोक में यश और शरीरान्त होने पर स्वर्ग (देवलोक) में निवास एवं महान ऐश्वर्यमय सुख भोग की प्राप्ती ही है। केवल धर्म मोक्षप्रद नहीं होता। जब धर्म के साथ भगवत् भागवत शब्द जुड़ते हैं, तब भगवत् या भागवत् धर्म संज्ञा होती है। तीर्थ, व्रत, उपवास, यज्ञ, दान, तप, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, मातृभक्ति, पितृभक्ति, गुरुभक्ति, पतिभक्ति, अतिथिसेवा इत्यादि ये सभी कार्य धर्म कार्य हैं। इनके करने से लोक में यश और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यद्यपि ये सभी कार्य भगवतप्राप्ति के सहयोगी हैं तथापि यदि भगवान् श्रीहरि का भजन होता है, तब तो यह सभी कार्य महान लाभकर हैं। परन्तु ध्यान रहे कि श्रीहरि भक्ति रहित ये सभी साधन मिलाकर भी जीव को संसार से मुक्त नहीं करवायेंगे॥

इसका अर्थ कोई ऐसा न समझे कि श्रीहरि भक्ति में उपर्युक्त साधनों का तिरस्कार है। श्रीभगवद् भक्ति महारानी जहाँ पधारती हैं वहाँ यह सभी साधन स्वयं ही सेवक की तरह उपस्थित हो जाते हैं लोक में सभी साधनों का प्रचार भगवत् भक्तों ने ही किया है। अस्तु सभी साधन सम्पन्न जीव ही भगवद्भक्ति का स्वाभाविक अधिकारी होता है। यह तो श्रीभक्ति

महारानी जी अहैतुकी दया है कि सर्व साधन हीन दीन, पतितों को भी वरण कर लेती हैं। इसलिये पतिव्रत परायण स्त्री को अनिवार्य रूप से भगवत् भक्ति करनी चाहिये। इतिहास साक्षी है कि माता श्री कौशल्या जी पतिव्रत परायण होते हुये भी नित्य श्री रंगनाथ जी का पूजन करती थी। श्रीं यशोदा जी भी देवार्चना करती थीं। श्री महाल्मीकीय रामायण में सभी श्री अयोध्या वासिनी माताओं का पंचदेवाराधन करना लिखा है। इसलिये यह धारणा सर्वथा भ्रमात्मक है कि स्त्रियों को पति के अतिरिक्त किसी का भी पूजन न करना चाहिये। सृष्टिकाल से अद्यावधि पर्यन्त हर-तालिका व्रत चला आ रहा है, जो केवल सती साध्वी देवियों का ही धर्म माना जाता है।

भारतीय परम्परानुसार क्वाँरी कन्यायें तो श्री दुर्गा जी (पार्वती) पूजन करती ही आ रही हैं। पुराणों में ग्राम्यदेवी देवताओं के पूजन का विधान भरा पड़ा है। व्याह के पूर्व भी रुक्मिणी जी देवी पूजने गईं थीं वहीं से भगवान् श्री कृष्ण अपहरण कर ले गये। श्री जानकी जी ने भी गिरजा पूजन किया। श्री रा० च० च० मा० अयो० का० दो० ८ में लिखा है कि श्री राम जी की माता जी ने पूजीं ग्राम देवि सुर नागा। और दो० ९ में गहे चरन सिय सहित बहोरी॥ वा० का० दो० ३५८ में॥

भारतीय परम्परा है कि ऋषि मुनि एकान्त में भजन करें। प्रभु प्रेरणा से प्रेरित होकर जब किसी सद्गृहस्थ के घर पर पधारें तो वह उनका समुचित रूप से सत्कार करके अपने को कृतार्थ माने। श्री रामचरित मानस में कई स्थलों पर सती साध्वी महिलाओं द्वारा ग्राम देवी देवताओं का पूजन ब्राह्मणो एवं संतों की चरण वन्दना तथा पूजन श्री गुरु पूजन स्पष्ट लिखा है। जो कि गीता प्रेस से ही छोटे बड़े कई साइजों में प्रकाशित है। क्या प्रेस के कर्मचारी अपनी आँख बन्द कर लिये हैं। इस रामायण से गीता प्रेस ने कई करोड़ रुपया उपार्जन किया होगा। तथापि यह आँख मिचौनी कैसी॥ गीता प्रेस ने ही तो उ० कां० में छापा है कि—गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई। जो विरंचि शंकर सम होई॥ दो० ९३ पंक्ति ५ क्या यह चौपाई पुरुषों के लिये ही गीता प्रेस ने छापी है, महिलाओं का इस पंक्ति से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यदि ऐसा ही था तब तो इस पंक्ति के नीचे इस प्रकार टिप्पणी लिख देना चाहिये था कि यह पंक्ति (चौपाई) केवल पुरुषों के ही लिये गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने लिखी है। महिलाओं के लिये यह विधान नहीं है। किन्तु यह भारी भूल गीता प्रेस के संस्थापक सम्पादक एवं संचालकों से हुई है कि इस चौपाई को

भी अन्य चौपाइयों की भाँति ही रहने दिया । अति उत्तम तो यही था कि जिसप्रकार कई चौपाइयाँ गीता प्रेस से निकाल दी हैं तदनुसार गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई : इस चौपाई को भी प्रकाशित न करता किन्तु अपनी ही भूल के कारण केवल पश्चा-ताप करना ही अविशिष्ट है । एक ओर गीता प्रेस लिखता है कि—गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई । जो विरंचि शंकरसमहोई ॥ और नारी धर्म नामक पुस्तक में लिखता कि—आज कल बहुत से लोग साधु, महन्त और भक्तों के वेष में विना गुरु के मुक्ति नहीं होती, ऐसा भ्रम फैलाकर भोली भाली स्त्रियों को मुक्ति का झूठा प्रलोभन देख कर उनके धन और सतीत्व का हरण करते हैं । और घोर नरक के भागी वनते हैं । पाठकगण विचार करें कि गीता प्रेस के कार्यकर्ता भंग के नशे में पागल हैं या नहीं । क्यों कि ऐसा लेख पागलपन में ही लिखा जाता है । विना गुरु के मुक्ति नहीं होती यह भ्रम तो सारे संसार में गीता प्रेस ने कम पैसों में श्री रामायण देकर फैलाया है । अव अपनी भूल को अन्य साधु, महन्त या भक्तों के शिर पर पटकना दूसरी भूल है । विना गुरु के ही यदि मुक्ति होती है, गुरु वनाने की किसी को आवश्यकता नहीं है, तो गीता प्रेस अपने प्रकाशन से गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई । जो विरंचि शंकर सम होई ॥ इस चौपाई को निकाल दे । यदि यह पंक्ति नहीं निकाली जाती है, तव तो विज्ञव्यक्ति यही समझेगा कि गीता प्रेस भी सभी की भाँति गुरु विनु भवनिधि तरै न कोई । को मानता है । पाठकगण सम्पादकों का एक पागलपन और भी देखें । वह यह कि अ० कां० दो० ५ की दशवीं पंक्ति है एकइ धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥ और ग्यारहवीं पंक्ति है कि—जगपतिव्रता चारि विधि अहहीं । वेद पुरान संत सव कहहीं ॥ परन्तु नारीधर्म नामक पुस्तक में इन दोनों चौपाइयों के मध्य में एक नवीन चौपाई की कल्पना करके लिख दी, वह यह है कि—मन वच कर्म पतिहि सेवकाई । तियहि न यहि सम आन उपाई ॥ इस चौ० के लिखने कातात्पर्य है कि स्त्री को पति सेवा के अतिरिक्त किसी भी देवी देवता, ईश्वर, भगवान्, या ब्रह्म की सेवा पूजन करना सर्वथा निषेध है । तथापि श्रीरामायणजी में कई थम्लों पर महि-लाओं से देवी, देवताओं का पूजन करना लिखा है । विनय पत्रिका पद १७४ में गीता प्रेस ने ही छापा है कि—भगवान् से विमुख करने वाले सभी सम्बन्धियों का परित्याग करके भगवत् भजन करने वाले का मंगल होता है । तज्योपिता प्रहलाद विभीषण वन्धु भरतमहतारी । वलिगुरु तज्यो कन्त ब्रज वनितन भये मुदमंगल कारी ॥ श्री ब्रजाङ्गनाओं ने अपने पतियों की आज्ञा का सर्वथा तिरस्कार करके जगत्पति भगवान् श्री कृष्ण से प्रेम किया, श्री मद्भागवत प्रमाण है । तव यह चौ० की कल्पना

करने का भारी पाखण्ड क्यों किया गया कि—मन बच कर्म पतिहि सेवकाई । तियहिं न यहि सम आन उपाई ॥ अजी भाई यह बात तो सभी धार्मिक विद्वान एक स्वर से मानते ही हैं कि स्त्री को मन बचन कर्म से पतिव्रतपालन करना चाहिये । तथापि साथ ही साथ ग्राम्य देवी देवता तथा कुल देवी देवताओं का पूजन भी परम्परागत होता ही आरहा है । और भगवान् श्रीहरि की उपासना करना तो जीवमात्र का स्वाभाविक स्वरूप ही है, इसका परित्याग क्यों । मेरे लिखने का यह तात्पर्य नहीं है कि महिलायें पति सेवा से विमुख होकर व्यभिचारिणी बन जायें । मेरा लक्ष्य तो केवल इतना ही है कि जीवात्मा का कल्याण भगवत् भजन से ही होना सम्भव है, अस्तु स्त्री पुरुष सभी चेतन भगवान श्रीहरि की भक्ति करके अपना कल्याण सम्पादन करें । इसलिये पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी गुरुवरण करके भगवान् की उपासना प्राप्त करके भजन भावना करते हुये पति सेवा करना अनिवार्य है । गीताप्रेस ने वन्दे कृष्णं जगद्गुरुम् कहकर भगवान् श्रीकृष्ण को ही गुरु मानो इसप्रकार स्त्री पुरुष सभी को गुरुवरण की दिशा से मोड़ा है । किन्तु यह मोड़ गलत है । श्रीकृष्ण जी तो भगवान् हैं, वह वर्तमान समय में गुरु बन कर उपदेश दें, यह संभव नहीं । यदि कहा जाय कि उनकी वाणी गीता को उपदेश मानकर चलेंगे, तो भी ठीक नहीं । पुस्तकों से जीव का कल्याण संभव होता तो भगवान् श्रीकृष्णजी श्रीसन्दीपन ऋषि को गुरु रूप में वरण करने की लीला नहीं करते । यद्यपि गीता भगवान् की वाणी है, पाठ करने, और जीवन में अभ्यास किया जाये तो बहुत लाभकर है । तथापि श्रीगुरुकृपा द्वारा प्राप्तज्ञान की विलक्षण महिमा है । जो पुस्तकों द्वारा प्राप्त होना सर्वथा असंभव है । यदि कोई महानुभाव यह कहें कि महिलायें गुरुवरण करने से पतन हो जाती हैं । इसलिये गुरु बनाना अनुचित है । क्यों कि आजकल सच्चे गुरु नहीं मिलते । यह कथन सर्वथा असत्य है । गुरु बनाने से कोई भी देवी पतन नहीं होती । गुरु बनाने से तो उत्थान होने का दिव्यज्ञान प्राप्त होता है । वर्तमान समय में भी लाखों साध्वी महिलायें महात्पुरुषों की कृपा से पतिव्रत परायण एवं सदाचारिणी होकर सादर सप्रेम भगवत भजन करती हैं । हां कुछ कुलटायें अवश्य ही समाज में प्रवेश करके साधिनी अर्थात विरक्त बनकर पति को त्यागकर यत्र तत्र कुछ साधकों को भ्रष्ट करती हुई अपना जीवन नष्ट कर रही होंगी । उन उन पर समाज नियन्त्रण करे । पाठक ध्यान दें पाश्चात् सभ्यता के प्रचार के कारण बड़े-बड़े शहरों (नगरों में रहने और न्युलाइट (नवीन सभ्यता) में पोषण होने वाली बालिकायें किसी भी साधु संत भक्त या महान्त को कुछ भी नहीं समझती हैं ।

भगवान् श्रीहरि तथा हरिभक्त पति प्रसङ्ग

रुक्मिण्याद्याः पट्टमहिष्यो मम श्रीर्नीला चयामम भार्या खगेन्द्र । सर्गे पूर्वस्मिन्हव्यवाहस्य पुत्री सास्ता भज सद्य एवा विशेषात् २७ ॥ कन्यैव सा कृष्णपत्नी च कामांस्तांस्तान् भजेन मनसा चिन्तितांश्च । अतीव यत्नं कव्यवाहं खगेन्द्र पितृष्वेकः सर्वदावै चकार २८ ॥ तथैव सा नैव भर्तारमाय यतस्तु सा कृष्णनिष्ठैकचित्ता तदाब्रवीत्कव्यवाहश्च पुत्रीं पतिं किमर्थं नेच्छसि मूढबुद्धे २९ ॥ तदब्रवीत्कव्यवाहंच पुत्री हरिविना सर्वगुणोपपन्ने । जन्मन्यस्मिन् भर्तृता नास्ति देवयतो भर्ता हरिरेवैक एव ३० ॥ यतो लोके सुस्त्रियः सर्वएव सदाज्ञेया विधवास्ते हि नित्यं । अनादि नित्यभुवनैकसारं सुसुन्दरं मोक्षदं कामदं च ३१ ॥ एतादृशं न विजानन्ति यास्तुसर्वास्ता वैविधवाः सर्वदैव । निमित्तभूतं भर्तृरूपं च जीव दैवोपेतं हरिभक्त्या विहीनम् ३२ ॥ सुकश्मलं नवरंध्रैः श्रवन्तं दुर्गन्धयुक्तं सर्वदा कुत्सितं च । एताः दृशे भर्तृजीवेनु तान् प्रयोजनं नास्ति कृष्णं विहाय ३३ ॥ देवस्त्रियो निजभर्तृन्विहाय तत्र स्थितं प्रीणयन्त्येव नित्यम् । एतश्च ताः सधवाः सर्वदैव लोकैर्वेद्या नात्र विचार्यमस्ति ३४ ॥ भर्तास्ते हरिभक्ता यदि स्युरासां स्त्रीणां जन्म साफल्यमेव । अनेक जन्मार्जित पुण्य संचयस्तद्भर्तारो हरिभक्ता भवेयुः, ३५ ॥ यद्भर्तारो हरिभक्ता न संति ताभिस्त्याज्यं स्वीगात्रं भृशं हि । स्वभर्तृभूतं कृष्णरूपं हरिं च स्मृत्वा सम्यग् यदि गात्रं त्यजेयु ३६ ॥ तदानैव ह्यात्महत्यानिदोषाः स्त्रीणामेवं निर्णयोयं हि शास्त्रे । यदभर्तारो न विजानन्ति विष्णुं तासां संगोनैव कार्या कदापि ॥ ३७ ॥ अनेकजन्मार्जित पुण्य संचयात्तद्भर्तारो विष्णु भक्ताभवेयुः । कलौयुगे दुर्लभा विष्णुभक्ता हरेभक्तिदुर्लभा सर्वदैव ॥ ३८ ॥ हरेः कथा दुर्लभा मर्त्यलोके हरेर्दीक्षा दुर्लभा च । हरेस्तत्त्वे निर्णयो दुर्लभो हि हरेर्दासैः संगमो दुर्लभश्च ॥ ३९ ॥ प्रदक्षिणं दुर्लभंवैमुरारेर्नमस्कारो दुर्लभो वै कलौ च । तद्भक्तानां पालनं दुर्लभं च सद्वैष्णवानां दुर्लभं ह्यन्नदानम् ॥ ४० ॥ तन्त्रोक्तपूजा दुर्लभावै मुरारेर्नामग्रहो दुर्लभश्चैव विष्णोः सुवैष्णवानां पूजनं दुर्लभं हि सद्वैष्णवानां भाषणं-दुर्लभं च ॥४१॥ शालग्रामस्पर्शनं दुर्लभं च सद्वैष्णवानां दर्शनं दुर्लभं हि । गोस्पर्शनं-दुर्लभ मर्त्यलोके सद्गुरु दर्शनं दुर्लभं सद्वरं च ॥४२॥ इतिगरुड़पुराण उ० खं० ब्रह्मकां० अ० १९ श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई की प्रकाशित ॥

अर्थ—श्रीकृष्णजी बोले ऐ गरुड़ ! रुक्मिणी, श्री, नीला इत्यादि जो मेरी ६ स्त्रियायें हैं, वह पूर्वकाल में हव्यावाह की कन्यायें थीं । २७ । उन्होंने अपने मन में कामना की कि हम श्रीकृष्णजी की स्त्री होवें । परन्तु ऐ गरुड़ उनके पिता हव्यवाह ने उन कन्याओं से कहा कि—ऐ मूर्खाओं तुम सब किस कारण से पति की इच्छा नहीं

करती हो । तब उन कन्याओं ने कहा कि–हे देव ! सर्वगुणों से सम्पन्न श्री भगवान् के विना इस जन्म में हम लोगों का दूसरा पति नहीं हो सकता है । कारण कि निश्चय करके एक भगवान् ही पति हैं ॥ ३० ॥ क्यों कि भगवान् के विना पति हुवे संसार में सुन्दर व्रतवाली जितनी स्त्रियायें हैं, वह सब निश्चय ही सदा नित्य प्रति विधवा ही हैं, सो जानो, कारण कि—जो अनादि, एकरस, नित्य, संसारमात्र में एक ही सार रूप सुन्दर, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष देने वाले हैं ॥ ३१ ॥ ऐसे भगवान् को जो स्त्रियाँ पति नहीं समझतीं, वह सर्वदा निश्यच करके विधवा ही हैं । क्यों कि भगवान् की भक्ति से हीन सदा काल में कर्म बन्धन से बँधे हुये पति रूप वह जीव निमित्त मात्र पति कहा ता है ॥ ३२ ॥ हे तात ! श्रीकृष्ण भगवान् के अतिरिक्त जो सदाकाल निन्दित अनेक पापों से युक्त नवछिद्रों से दुर्गन्ध बहते हुये ऐसे जीव पति से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है ॥३३॥ इसी कारण से देवस्त्रियायें अपने पतियोंको छोडकर नित्यप्रति भगवान् से प्रीति करतीहैं । अतः भगवान् से प्रेम करने के ही कारण संसारसे पूजिता और वन्दिता हैं । और वह सर्वथा सधवा (सौभाग्यवती) बनी हैं । इसमें कुछ भी विचार करने का काम नहीं है ॥ ३४ ॥ यदि हरिभक्त पति मिल जाये तब तो स्त्रियों का जन्म सफल है, किन्तु अनेक जन्मों के पुण्यसंचय होने पर हरिभक्त पति मिलता है ॥ ३५ ॥ यदि पति हरिभक्त न मिले, तो भगवत्भक्ता स्त्रियों को चाहिये कि अपने शरीर को त्याग देवें, और सच्चे पतिरूप भगवान् श्री कृष्ण का स्मरण करती हुई सावधानी से शरीर को त्यागें तो ॥ ३६ ॥ आत्महत्या का दोष भी नहीं लगता, स्त्रियों के लिये शास्त्रमें यही निर्णय है । यदि प्रति हरभक्ति तथा ।भगवान् को नहीं मानता जानता हो, तो हरिभक्ता स्त्री ऐसे भगवत् भक्ति विमुख पति का कदापि संग न करे । क्यों कि गरुड़पुराण उ० खं० ब्रह्म कां० अ० १४ के ३६ वें श्लोक में लिखा है कि—हरिभक्ति विहीनाये ह्यसुराः परिकीर्तितः ॥ अर्थ—भगवान् की भक्ति से रहित मनुष्य असुर कहे जाते हैं ॥ ३७ ॥ अनेक जन्मों के पुण्य एकत्रित होने पर स्त्री को भगवत्भक्त पति मिलता है । कलयुग में भगवद्भक्त तथा भगवान् की भक्ति सर्वदा दुर्लभ है ॥ ३८ ॥ मृत्युलोक में भगवान् की कथा दुर्लभ है, श्री वैष्णवीय दीक्षा दुर्लभ है, और भगवत्तत्त्व निर्णय करना दुर्लभ है, तथा हरिदासों (भगवान् के भक्तों) का समागम सत्संग होना दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ भगवान् की परिक्रमा करना दुर्लभ है निश्चय करके कलियुग में भगवान् को नमस्कार करना दुर्लभ है, और भक्तों का पालन (सन्त सेवा) करना दुर्लभ है, तथा सज्जन वैष्णवों को अन्नदान देना दुर्लभ है ॥ ४० ॥ तन्त्रोक्त भगवान्

का पूजन करना, और भगवान् के मंगलमय श्री सीताराम, राधाकृष्ण, नारायण वासुदेवादि नामों का जप करना दुर्लभ है, तथा श्री वैष्णवों का पूजन करना एवं उनसे हरिचर्चा करना दुर्लभ है ॥ ४१ ॥ मृत्युलोक में शालिग्राम का स्पर्श, श्री वैष्णव दर्शन, गौओं का दर्शन स्पर्श, भगवान् के गुणगान करना, सद्गुरु का सत्संग, ये सब दुर्लभ है ॥ ४२ ॥ गतिबोध उत्तरार्द्ध पृ० २६७ से २७२ तक ॥

सज्जनवृन्द प्रिय पाठकगण ध्यान दें कि—इस उपर्युक्त प्रसंग से सुस्पष्ट है कि भगवान् की भक्ता स्त्री भगवद्भक्तिपति के ही साथमें भगवान् की भक्ति भावना उपासना (पूजा—पाठ) करते हुये पतिव्रत परायण होकर सुखपूर्वक जीवन वितावे । पूर्व संस्काराधीन यदि हरिभक्त पति न मिल पाये, और यदि हरिभक्ता पत्नीहै, तो उस स्त्रीको यदि भगवान् में दृढ़ में प्रेम हो, शारीरिक सुख भोग का लोभ तथा मरने के कष्ट से भय न लगे तो अपने इष्टरूप भगवान् का स्मरण करके सावधानी से भगवन्नाम जपते हुये शरीर त्याग देना चाहिये । उसे आत्महत्या का दोष न लगेगा, न अकाल मृत्यु ही होगी । भगवान् के नाम जप तथा भगवान् में सद्भाव होने के कारण भगवत्कृपा की अधिकारिणी होगी ॥ किन्तु शरीर त्याग देना खेल नहीं है । शरीर के सुख सभी को प्रिय हैं, तब रो रोकर जीवना विताना ही शेष है । शारीरिक सुख के लोभ रहित स्त्रियायें बन्धन मुक्त हैं । उन पर भगवत् विमुख पति की दासता में रहने का कड़ा शासन नहीं है । हाँ यह बात अवश्य है कि जब तक विषयों से वैराग्य और भगवान् में अनुराग न हो, तब तक तो पति का अनिवार्य बन्धन है । परन्तु जब विषय कर्म से चित्त सर्वथा ऊपर उठ जाये, सभी सुखों की वासना नष्ट हो जाये, एकमात्र भगवान् के दर्शन बिना सारा संसार अप्रिय लगने लगे, उस स्त्री को भववत् भक्ति विहीन हरिविमुख पति का मोह त्यागकर संसार की लज्जा भय संकोच न मानकर निर्भयरूप से अपने मनको भगवान् में लगाकर शरीर त्याग देना चाहिये, या तपस्विनी बन कर सत्संग में भाग लेकर भजनमय जीवन विताना चाहिये । भगवत्विमुख नास्तिक पति की सेवा से मुक्त नहीं पायेगी ॥

किन्तु इस प्रसंग को पढ़कर जिन स्त्रियों को सभी विषयों में पूर्ण प्रेम है, भगवान् में साधारण प्रेम है, शारीरिक सुखों की आवश्यकता है, ऐसी महिलायें भी भूल से अपने पति को त्याग कर तपस्विनी बनने का झूँठा स्वाँग न बनावें अन्यथा भगवान् तो क्या मिलेंगे, व्यभिचार मय जीवन बन जायेगा । लोक परलोक दोनों नष्ट होकर नर्क की दुर्गन्धमय नालियों में विचरण करने का शुभ अवसर मिलेगा । अस्तु स्त्री को घर से बाहर जाने का संकल्प भी हितकर न होकर हानिकर होगा । सुख

दुख उठाकर दशवात सहकर भी घर में ही रहना उचित है । क्यों कि स्त्री जहाँ जायेगी, विषयाभिलाषी लोग उसे वहीं अनुचित भाव से देखें गे । जो शारीरिक सुविधायें देगा, उसका संकोच करके उसकी रुचि का पालन करना अनिवार्य होगा ही, जैसा कि वर्तमान समय में देखा सुना जाता है कि न जाने कितनी देवियाँ तपस्विनी बनी हुई हैं, वे स्वयं तो नरक गामिनी हैं ही, लाखों साधकों को भी नर्कगामी बना रहीहै । परन्तु सभी देवियाँ भी व्यभिचारिणीं नहीं हैं । लाखों की संख्यामें कुछ भगवत् कृपापात्रा भी हैं, तथापि अधिक देवियों का जीवन विकृतरूप में देखा सुना जाता है। इसलिये देवियों को घर छोड़कर विरक्त बनना उचित नहीं है । यद्यपि माया के चक्र में पड़ कर बड़े बड़े सिद्ध विरक्त ऋषि मुनि भी साधनपथ भ्रष्ट हो जाते हैं, तथापि उनमें स्वतन्त्रता होने के कारण कोई विवशता नहीं रहती । स्त्री का शरीर स्वाभाविक आकर्षक होने के कारण उसको विरक्त बनने में महान कष्ट एवं आपत्ति का सामना करना पड़ता है । फिर भी जिसका मन भगवान् में आशक्त हो गया है वह संसार के सभी बन्धनों को तोड़कर प्रेममूर्ति भक्तिमती श्री मीरा बाई जी, सहजोबाई, श्री सीता सहचरी जी, इत्यादि सदृश्य भगवान् के लिये मरने जीने से बिलकुल भी डरती नहीं, सब से सोचनीय विषय तो यह है कि–आजकल नवीनावस्था की बालिकायें और बालक विरक्त बनने को तैयार हो जाते हैं । और गुरु लोग अनुमति देकर विरक्त बना लेते हैं । यह भी नहीं सोचते कि—जब ये लोग युवा (जवान) होंगे, और इनको विषय में प्रवृत्ति उत्पन्न होगी तब क्या होगा । उसी का भयंकर दुस्परि–णाम है कि उन नवीनावस्था वाले साधकों की यत्र तत्र बधाइयाँ बजती हैं । महान पुरुषों से निवेदन है कि—लघुवयस्क बालकों की विरक्त न बनाया जाये । आश्रमों पर आने वाले बालकों को समझा बुझाकर वापस घर भेज देना चाहिये । अन्यथा दिनों दिन समाजी व्यवस्था बिगड़ती ही जागेगी ।

सभी को ढोंगी, पाखण्डी कहती हैं । न राम या रहिमान को ही मानती । तथापि व्याह के पूर्व ही चार छै बालकों की माँ बन जाती हैं तब व्याह का कोरा पाखण्डमात्र होता है । इस बात को कौन नहीं जानता है । इन बालिओं का किस साधु महान्त या भक्त से पतन होता है । तो कहना ही पडेगा कि उन्हीं धर्मावतारों के द्वारा जो साधु महांत और भक्तों को पाखन्डी बताते थे । सभी बड़े नगरों में अनाथालय हैं, जिनमें हजारों छोटे बड़े बालक और बालिकायें हैं । जिनका भरण पोषण वहाँ की समिति अथवा शासन की ओर से हो रहा है । कहिये श्रीमान लोगों यह अनाथ बालक बालियें किसके हैं, तो सभी चुप हो जायेंगे । बड़े साहस करके

बोलेंगे कि ये सब अज्ञात हैं। यह क्यों नहीं कह देते कि साधु, महान्त या भक्तों के, किन्तु कैसे कहें। यह कहना क्या सरल है। गुरु बनाने से महिलायें पतन होनी चाहिये थीं किन्तु बिना गुरु बनाये ही इनका पतन क्यों होता है। तब हार मानकर पछताते हुये माथा पीट कर कहेंगे कि कालेज के इस्टूडेन्टस (लड़के) और टीचरों के साथ, या घर में सेवा करने वाले सर्वेन्ट (नौकरों) के साथ। अब कहो, आप क्या सोचते हैं कि महिलाओं का सुधार कैसे संभव है। बालकपन में बिगड़ी चाल को क्या पति भगवान् सुधार सकते हैं। जो कि स्वयं ही न जाने कितनी बालिकाओं से अवैधानिक सम्बन्ध जोड़ चुके हैं। और व्याह होने के बाद भी सुन्दर स्त्री देखकर तमक जाते हैं। यदि उनकी चले तो उससे प्रेम अवश्य ही करलें। वश न चलने पर बेचारे हाथ मीज कर कहरते हुये किसी तरह रह जाते हैं। कहिये जी ऐसी पतिव्रता देवियाँ जो चार बालक जन्माकर पतिवरण करें। और ऐसे एक पतिनीव्रत वाले पुरुष जो कि व्याह के पूर्व दश बीस बालिकाओं के पति बनकर तब पत्नी वरण करें। इन सबका उद्धार करने का उपाय गीता प्रेस वाले बतावें क्या होगा।

इन बालक बालिकाओं के पतन में किसी भी साधु, महान्त या भक्त का दोष नहीं है। सामायिक प्रेरणा से प्रेरित शिक्षा का परिवर्तन विदेशी संस्कृति का समावेश पेपर (समाचार पत्र) में झूठ बातें पढ़ना, रेडियो द्वारा अश्लील गाना सुनना, सिनेमा में नग्नचित्र देखना, और मनमाने रूप से भक्ष्याभक्ष्य सभी पदार्थों का सेवन करना ही विषम परिस्थिति का मुख्य कारण है। अभी भी सभी बालक या बालिकायें पतन नहीं होते हैं। जिन बालक बालिकाओं का पालन प्राचीन संस्कृति (सभ्यता) के अनुसार होता है। शिशु जीवन से ही जिनके जीवन में धार्मिक भगवत् भक्तों की कहानियाँ सुनाई जाती हैं। भगवान् श्री हरि के मंगलमय आवतारिक दिव्य लीला गुणकीर्तन कथा श्रवण करायी जाती है। जिस सद्‌गृहस्थ के घर में नित्य भगवान् का पूजन होता है, भगवान् का भोग लगा हुआ प्रसाद खाने को मिलता है। जो माता-पिता बच्चों को सिखाते हैं कि भगवान् को प्रणाम करो, अपने से बड़ों का समादर करो। गुरुजनों की आज्ञा मानो और उनकी सेवा करो। जिन्हें शुद्ध सात्विक पदार्थ खिलाये जाते हैं, वे बालक बालिकायें आज भी सौम्यस्वभाव वाले, सुशील एवं सदाचार सम्पन्न चरित्रवान हैं। अस्तु महिलाओं के चरित्र दोष में साधु सन्त महान्त या भक्तों का अपराध नहीं है।

यह बात अवश्य ही है कि साधु, सन्त, महान्त या भक्तों का रूप बनाकर साधु सन्त महान्त और भक्तों का नाश करने वाले पाखण्डो लोग स्वच्छन्दता पूर्वक रहते हैं। कभीवैष्णव कभीशैव्य, कभीनागा, कभीत्यागी बनकर मनमाना व्यहार करते हैं। उनके ऊपर समाज एवं शासन को वैधानिक विधान लगाना चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वैष्णव, शैव्य, शाक्त, नागा, त्यागी पाखण्डी हैं। सच्चे श्रीवैष्णव, शैव्य, शाक्त, नागा, त्यागी तो जगत हितचिंतक हैं। किन्तु जो हृदय से न बनकर बाहर से ही लोगों के ठगने के लिये वैष्णव, शैव्य, शाक्त, नागा; त्यागी बनकर पैसा रुपया कमाना ही जिसका एकमात्र लक्ष्य है, वही व्यक्ति अनुचित करते हैं। जिन श्रीवैष्णवों, शैव्यों, शाक्तों नागा, त्यागियों का ध्येय भगवत प्राप्ति या मुक्ति प्राप्त करना है, वह महानुभाव कभी भी अनुचित कार्य नहीं करते। अस्तु सभी साम्प्रदायिक सन्त, महान्त; भक्त जगत हितचितक हैं। यदि कोई सन्त, महान्त या भक्त कहीं अनुचित करते हैं तो जनता को उचित है कि उनको चेतावनी दे, उन्हें सावधान करे कि आप विरक्त हैं, अनुचित कार्य आपके योग्य नहीं है। फिर भी न मानने पर समाज एवं शासन को उनपर उचित शासन करना चाहिये। किन्तु किसी एक व्यक्ति के अपराध करने पर सम्पूर्ण समाज को ढोंगी पाखण्डी मानना भारी भूल है। सभी साधु, सन्त, महान्त और भक्त ढोंगी पाखण्डी नहीं हैं। इसलिये जन समुदाय को उचित है कि भली भाँति छानबीन करके अच्छे स्वभाव व्यवहारवाले साधु, सन्त, महान्त और भक्तों से सम्बन्ध स्थापित करके भगवत् भक्ति भावना जानकर अपना कल्याण सम्पादन करें। परन्तु यह भावना मन में रखना भारी भूल है कि महिलायें गुरुदीक्षा लेने से चरित्रहीन हो जाती हैं। गुरुदीक्षा से चरित्र हीन तो नहीं होती हैं, चरित्रवान बनजाती हैं। तथापि यदि समाज में देखा सुना जाता हो कि किस सन्त महान्त या भक्त के सम्पर्क से देवियों का चरित्र भ्रष्ट होता हो, तो समाज को उचित है कि उस अनुचितकर्ता व्यक्ति की रिपोट थाना में पुलिस कर्मचारियों को देकर इन्क्वारी (अन्वेषण) करावें। यदि बात सत्य हो तो पुलिस उस व्यक्ति को कारागार (जेल) बन्द करदे। जिस क्षेत्र में दशबीस पाखण्ड जेल में बन्द हो जायं, उस क्षेत्र का तुरंत ही सुधार हो जाये। परन्तु खेद तो इसी बात का है कि जनता साधु महान्त, भक्तों की निन्दा भी करती है। पुनः उन्हीं के पैर भी पूजती है। यह महान अनुचित है। जो सन्त, महान्त, भक्त निन्दा के पात्र हैं उनको पूजा और प्रशंसा करना अधर्म, अन्याय, पाप को उत्कर्ष बढ़ाना है। और जो सन्त, महान्त,

भक्त पूजा प्रशंसा के पात्र हैं उनकी निन्दा करना महान पाप है। इसलिए निन्दापात्र व्यक्ति अर्थात् जो चरित्र भ्रष्टव्यक्ति हो, उसकी पूजा और प्रशंसा कभी भी नहीं करनी चाहिये। क्यों कि अग्नि में हवन करने पर ही हवनकर्ता को यथेष्ठ लाभ होता है। राख में हवन करने से समय श्रम तथा हव्यपदार्थ सभी व्यर्थ हो जाते हैं। और पूजा प्रशंसा के पात्रों की निन्दा करने पर भगवत् विधानानुसार महानपाप का भागी बनना पड़ता है। अस्तुजन समाज जिस सन्त, महान्त भक्त को चरित्रवान भगवत् भक्तिपरायण जनहितचिंतक समझता हो उसी के उपदेशामृत को मानकर साधन करे। और जिस सन्त, महान्त, भक्त के विषयिक ऐसी सत्य जानकारी हो कि यह व्यक्ति चरित्रभ्रष्ट है, उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद उसी समय करले। वह व्यक्ति भले ही असाधारण पाण्डित्य पूर्ण वाक्यपटु और नाना सिद्धियाँ प्राप्त क्यों न हो। उसका सम्पर्क किसी को विशेष लाभ कर नहीं होपाता है। गीताप्रेस जिसग्रन्थ का श्लोक प्रकाशित करता है उसका नाम तथा अध्याय भी लिखता है। परन्तु नारीधर्म नामक पुस्तक में ३१ पृ० पर "पत्यौजीवित यो तु स्त्री उपवासं व्रतं चरेत्। आयुष्यं हरते भर्तुर्नरकं चैवगच्छति" इस श्लोक का कुछ भी पता नहीं लिखा। संभव यह श्लोक भी काल्पनिक है। यदि प्रमाणिक होता तो अन्य श्लोकों की भाँति ग्रंथ का नाम तथा अ० एवं श्लोक नं० लिखा जाता॥ दूसरी बात यह भी है कि—गीताप्रेस से प्रकाशित श्रीरामचरितमानस अयो० कां० ८६ दो० में लिखा है कि—"राम दरसहित नेमव्रत करत नगर नर नारि" यहाँ पर नरों के साथ नारियों का भी नेमव्रत करना लिखा है, क्या वह सभी स्त्रियाँ विधवा थीं। यदि विधवा नहीं थी, तो नेमव्रत क्यों करती थीं। इससे सिद्ध है कि पति के रहते हुये भी स्त्रियों को श्रीसीताराम दर्शन के लिये नेमव्रत करना गीताप्रेस मानता है। पुनः श्रीदशरथजी के देहावसान के पश्चात दाह संस्कार के समय—'गहिपद भरत मातु सब राखी। रहीं राम दर्शन अभिलाषी॥ अयो० कां० दो० १७०॥ पतिव्रत परायण साध्वी देवियों को पति के साथ सती होना ही उत्तम माना गया है। परन्तु श्रीभरतजी की प्रार्थना सुनकर सती होने को तैयार होते हुये भी श्रीकौशल्यादिक सभी मातायें सती न होकर श्रीराम दर्शन के लिये जीवित रहीं। इससे भी यह सिद्ध है कि श्रीरामदर्शन का पद सती होने से बहुत ऊंचा है। अस्तु पती के रहते हुये तथा पति के मरने पर दोनों अवस्थाओं में स्त्रियों को श्रीसीताराम, दर्शनार्थ नेम, व्रत, उपवास पूर्वक श्रीसीताराम उपासना करनी चाहिये॥

पुनः लंका कां० में देखिये पंचकन्याओं में गणना होनेवाली मंदोदरी ने रावण से श्री राम भजन करने को बहुत प्रेरणा की। रावणवध के बाद भी कहा कि—अब तव शिर भुज जम्बुक खाहीं। रामविमुख यह अनुचित नाहीं॥ जब कि सती देवियों को भूलकर भी पति के अतिरिक्त किसी पुरुष को प्रसंसा करना अनुचित माना जाता है। इससे भी सिद्ध है कि पतिव्रतायें भी श्री राम जी की उपासना कर सकती हैं। पतिव्रत धर्म में हानि नहीं होगी।

प्रिय पाठकों से निवेदन है कि वह गीताप्रेस के कर्मचारियों के एक महान प्रमाद पर दृष्टिपात करें कि वास्तव में वह लोग पूर्वापर (आगे पीछे) का विचार न करके मस्ती में आकर जो चाहते लिखकर प्रकाशित कर देते हैं। वह यह है कि-भक्तचरितांक में पृ० ३०४ से ३०७ तक जगतगुरु श्री स्वामी शंकराचार्य जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र प्रकाशित है जिसमें लिखा है कि श्री शंकराचार्य जी केवल सात वर्ष की आयु में वेद वेदान्त और वेदांगों का पूर्ण अध्यन करके घर लौट आये। आठ वर्ष की आयु में माता की आज्ञा से गृहत्याग कर नर्वदातट पर स्वामी श्री गोविन्द भगवत्पाद् से सन्यास की दीक्षा ली। और भक्तचरितांक पृ० ३०३ से ३०४ तक जगतगुरु श्री विष्णु स्वामी जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र में लिखा है कि थोड़े समय में संपूर्ण वेद पुराण का ज्ञा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। और भ० च० पृ० ३३५ से ३३७ तक जगतगुरु श्री वल्लभाचार्य जी के जीवन में लिखा है कि– १३ साल की अवस्था में में ही ये वेद, वेदाङ्ग, पुराण, धर्मशास्त्र आदि में पूर्णनिष्णात हो गये। और पृ० ३३० में जगतगुरु श्री स्वामी निम्बार्काचार्य जी के जीवन चरत्रि में लिखा है कि—तब मुमुक्षु पुरुष सद्गुरु की शरण ग्रहण करता है। गुरु द्वारा उपदिष्ट उपासना द्वारा शुद्धचित्त में भक्ति का प्राकट्य होता है। यही भक्ति जीव को भगवत् प्राप्ति कराकर मुक्त करती है। पृ० ३३० में ज० गु० श्री स्वामी माध्वाचार्य जी के जीवन में लिखा है कि—जब वेद शास्त्रों की ओर इनकी रुचि हुई तो थोड़े ही दिनों में सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करली। पृ० ३३८ में प्रेमावतार श्री चैतन्यदेव के जीवन में लिखा है कि—श्रीवासुदेव सार्वभौम और प्रकाशानन्द सरस्वती इनके अनुयायी श्री कृष्णप्रेमी बन गये पृ० ३०५ में श्री यामुनाचार्य जी के जीवन में लिखा है कि ये बाल्यावस्था में ही अद्भुत प्रतिभाशाली एवं विद्वान थे। पृ० ३१० में ज० गु० श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी के जीवन में लिखा है कि—उन्होंने लगभग १०८ ग्रन्थों की रचना की, जिनमें भगवत्भक्ति कूट कूट कर भरी है।

[पृ० ५० के बाद का शेष]

अस्तुमानव मात्र को योग्य महान पुरुषों से मन्त्रदीक्षा लेकर भगवत् भजन करके मनुष्य जीवन प्राप्त करने का परम लाभ लेना चाहिए ॥ अब पतिरेको गुरुः स्त्रीणां पर भी विचार करलिया जाये । पतिरेको गुरुः स्त्रीणां का शाब्दिक अर्थ हुआ कि—स्त्रियों के लिये एकमात्र पति ही परम पूज्य है । यह चाणक्य नीति अ० ५ का वचन है, इसका भाव है कि स्त्री शारीरिक सभी सम्बन्धियों की अपेक्षा पति को अधिक पूज्य (श्रेष्ठ) माने ॥ परन्तु इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि पति के अतिरिक्त किसी भी अन्य को कुछ भी न माने । शास्त्रोक्त वचनानुसार यह मान्य है कि स्त्री के लिये पति ही सर्वस्व है । तथापि अनादिकाल से परम्परागत पति के सम्बन्धी श्वसुर ज्येष्ट देवर इत्यादि का भी सत्कार देवियाँ करती ही आरही हैं। लोक मर्यादा का विचार रखकर आवश्यकतानुसार सेवा भी करती हैं । किन्तु पतिभाव एकमात्र पति में ही रहता है । इतने पर भी अन्य पूज्य वर्गों में भी पूज्य भाव रहता है, और रहना ही चाहिये ॥

कुछ नवीन विचारकों का कहना है कि - स्त्री अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुष के चरण स्पर्श न करे । यदि चरणस्पर्श करती है, तो पतिव्रत नष्ट होजायेगा । किन्तु यह बात सर्वथा अनर्गल है । भारतीय परम्परा में देवियाँ अपने पति के पिता को अपने पिता के समान पूज्य भावरखकर शुद्ध हृदय से प्रणाम एवं सेवा करती आ रही हैं ॥ पतिव्रत भंग होने की बात तो काम भाव में है, पूज्य भाव में नहीं । श्री मिथिलाजी से बरात लौटकर श्रीअवध आई सभी का यथोचित सत्कार हुआ । तत्पश्चात् श्रीदशरथजी महाराज महल में पधारे । श्रीकौशल्यादिक महारानियों से कहने लगे कि—बधू लरिकिनी परघर आईं । राखेहु पलक नयन की नाईं । बा० कां० ३५५ दो० ॥ अर्थात वधुयें अपने माता पिता से बिछोह होकर परघर आपके घरो में आई हैं । अब आप सब इन्हें अपनी प्रिय पुत्रीवत् दुलार पूर्वक रखिये । जैसे पलक नेत्र की रक्षा करता है । वैसे ही आप लोग भी वात्सल्य पूर्वक इनका लालन पालन कीजिये । इसके पूर्व पूज्य चरण श्रीगोस्वामीजी ने लिखा है कि—बधूसप्रेम गोद बैठारीं । बार-बार हिरिय दुलारीं ॥ बा० कां० ३५४ दो० ॥ क्रम से चारों वधुओं को वात्सल्य भाव से अपनी आत्मज प्रिय पुत्री के समान प्यार पूर्वक गोद में बिठाकर दुलार किया । और भी देखिये—भूसुर भीर देखि सबरानी । सादर उठीं भाग्य बड़जानी ॥ बा० कां० ३५२ दो० ॥ पायं पखारि सकल अन्हवाये । अर्थात् सभी महारानियों ने ब्राह्मणों की भीर देखी, तो अपना बहुत बड़ा भाग्य जानकर आदर पूर्वक उठीं । और उन ब्राह्मणों के चरण धोये तथा स्नान करने की पूर्ण व्यवस्था की ।

पुनः श्री विश्वामित्र जी की—"कीन्हि प्रशंसा भूपति भूरी । रानिन सहित लीन्ह पग धूरी ॥ अर्थात् राजा ने बहुत प्रशंसा करके महारानियों समेत श्रीविश्वामित्र जी के चरणों की धूल लेकर अपने मस्तक पर चढ़ाई ॥ और—भीतर भवन दीन्ह वर वासू । मन जोगवत रह नृप रनिवासू ॥ अर्थात् अन्तःपुर में श्री विश्वामित्र जी को निवास स्थान दिया । और राजा चक्रवर्ति श्री दशरथ जी तथा रनिवास [मातायें [मनोनुकूल सेवा करती रहती थीं ॥ पुनः—पूजे गुरु पद कमल बहोरी । वधुन समेत कुमार सब रानिन सहित महीश । पुनि पुनि वन्दत गुरु चरन देत अशीष मुनीश ॥ वा० कां० ३५२ दो० ॥ अर्थात् वन्धुओं समेत चारों राजकुमार एवं श्री कौशल्यादिक महारानियों ससेत श्री दशरथ जी वारम्वार श्री विश्वामित्र जी के श्री चरणों की वन्दना करते हैं ॥

पुनः श्री पार्वती जी के प्रगट होने का समाचार पाकर श्री नारद जी श्री हिमांचल जी के घर में पधारे, तो । नारि सहित मुनि पद शिर नावा । चरन सलिल सव भवन सिंचावा ॥ निज सौभाग्य वहुत गिरिवरना । सुता वोलि मेली मुनिचरना ॥ वा० कां० ६५ दो० ॥ अर्थात् अपनी धर्म पत्नी श्री मैंना जी समेत श्री नारद जी के चरणों में मस्तक झुकाकर चरण धोये, पुनः उसी चरणामृत से सम्पूर्ण घर को सींचा । और अपने भाग्य की वहुत प्रशंसा करके श्रीपार्वती जी को वोलाकर श्रीनारद जी के चरणों मस्तिक रख कर प्रणाम करवाया । इन प्रसंगों में पतिव्रता शिरोमणि माताओं क्वाँरी वालिकाओं को महान पुरुषों के चरणों का स्पर्श करना प्रणाम करना सुस्पष्ट रूपेण प्राप्त होता है । तथापि कतिपय सज्जनों की हठ है कि स्त्री को अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुष का चरण नहीं छूना चाहिये । श्री मद्भागवत में एवं अन्य पुराणों में भी कई सती साध्वी पतिव्रताओं के द्वारा सन्त महान पुरुषों एवं व्राह्मणों के चरण स्पर्श तथा पूजन का प्रमाण है । तो भी हठी व्यक्ति को सम-झाना ब्रह्मा जी के भी वश की वात नहीं है ।

किसी एक स्मृति या संहिता के आधार पर हठ वाँधकर यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि स्त्री को किसी भी परिस्थिति में पति के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुष के चरण नहीं छूना चाहिये तो सभी बुद्धजीवी वनने वाले बुद्धि के दरिद्रों से मेरा नम्र निवेदन है कि—यह वात आप लोग किस युग की देवियों (महिलाओं) के लिये वता रहे हैं, पति के अतिरिक्त किसी भी पुरुष के पैर न छूना चाहिये ।

हाँ यह तो हो सकता है कि—मातायें वहिनें इन हठवादियों की वात मानकर सन्त महान पुरुषों एवं पूज्य विद्वान ब्राह्मणों के चरण स्पर्श करना तो सहज ही में

बन्द कर देंगी । अथवा न्यूलाइट (नवीन संस्कृति) में पोषण होने वाली माताओं बहिनों ने छोड़ ही दिया है । वह तो सन्तों एवं ब्राह्मणों को पाखण्डी समझती हैं, तब प्रणाम क्यों करेंगी , यह सब प्रभाव विदेशी सभ्यता का है ।

परन्तु ध्यान देना कि—पूज्य सन्तों और ब्राह्मणों के तो चरण स्पर्श मात्र से पतिव्रत नष्ट हो जायेगा । किन्तु थियेटर हालों [सिनेमाघरों] में हजारों की भीड़ में घुसते तथा निकलते और मेलाओं तथा मार्केटों (बाजारों) में धक्का खाने में पतिव्रत धर्म लाखगुणा वृद्धि को प्राप्त होता होगा । और क्लबों में मद्द (शराब) पीकर कई स्त्री पुरुष एक साथ नग्न होकर नृत्य गान करने में तो साक्षात् भगवान् ही मिल जाते होंगे ।

अजी भारत वासियों अपनी प्राचीन परम्पराओं को अनर्गल मानकर नवीन पद्धति के ही अपनाने का यह सब भयंकर परिणाम है । अस्तु अपनी प्राचीन पर-म्पराओं का अतिक्रमण न करके अनुसरण करने में ही श्रेय प्राप्त होगा । सन्तों तथा ब्राह्मणों से जगत का परम हित हुआ है, होता है, भविष्य में भी होगा । अस्तु पूज्यों के चरण स्पर्श में पतिव्रत नष्ट तो न होगा । अपितु उनके प्रसाद (आशीर्वाद) से शुभ उपदेश से पातिव्रत में दृढ़ता होगी ।

अजी यह कौन कहता है कि पतित स्वभाववाले सन्तों या ब्राह्मणों का पूजन करो । वर्तमान की तो सभी मातायें बहिने पढ़ी लिखी बुद्धिमान हैं । जिन सन्तों या विद्वान ब्राह्मणों का जीवन निन्दनीय हो । उनसे भूल कर भी व्यवहार नहीं करिये । किन्तु अपनी बुद्धि से भली भाँति कसौटी करके भगवत् कृपापात्र सन्तों या ब्राह्मणों का समादर स्वागत) करके उनके अमृतमय शुभोपदेश से लाभ उठाना चाहिये । विचार कीजिये कि हृदय में पूज्य भाव रखकर शुद्ध मनसे सन्तों या विद्वान ब्राह्मणोंके चरण स्पर्श करने से तो पतिव्रता धर्म नष्ट हो जायेगा—किन्तु मेल ट्रेनौं में मोटरों में सादियों के अवसर पर जब ५० व्यक्तियों की सीटों पर सौ से भी अधिक व्यक्ति बैठते हैं उस समय गाड़ी पर चढ़ने और उतने में सर्वाङ्ग से रगड़ हो जाती है । उस परिस्थिति का मुझे पता है । मैं बार बार यात्रा करता रहता हूँ । जब उस भीड़ में सर्वाङ्ग स्पर्श से किसी भी माता बहिन का पतिव्रत धर्म नष्ट नहीं हो जाता है, तब यह कहना या लिखना कि सन्तों या गुरुजनों के भी चरण स्पर्श नहीं करना चाहिये । ये कहाँ तक उचित होगा ।

बन्धुओं सारा धर्म अथवा अधर्म तो भावना से ही सम्बन्धित रहता है। विचार किया जाये कि—आप सब जिस आँख से अपनी स्त्री को देखते हैं। उसी आँख से अपनी लड़की, बहिन, माता, चाची मौसी; नानी इत्यादि को भी देखते हैं। भेद केवल भावना का ही रहता है। यद्यपि माता, बहिन लड़की, मौसी इत्यादि तथा स्त्री के सर्वाङ्गों की बनावट तथा क्रिया सामान्य तया एक जैसी ही है। तथापि भाव भेद से हमें और आपको महान अन्तर दीखता है। यद्यपि सभी स्त्री एवं पुरुषों को विषय भोग में स्वाभाविक रुचि रहती है। तथापि न तो सब स्त्री ही सब पुरुषों के साथ विषय की रुचि रखतीं हैं न सब पुरुष ही सब स्त्रियों से विषय की रुचि रखते हैं। जैसे स्त्री अपने पति के साथ और पुरुष अपनी पत्नी के साथ एकान्त रहने पर समयानुसार विषय सेवन की रुचि प्रगट करके विषयानन्द का अनुभव करते हैं। किन्तु धार्मिक स्त्री अपने पिता भाई चाचा मामा इत्यादि के साथ और पुरुष अपनी माता बहिन बेटी चाची इत्यादि के साथ एकान्त रहने पर भी विषय सेवन की भावना नहीं करते हैं। यदि विषय की भावना करें तो वह स्त्री पुरुष पतित माने जाते हैं।

एक बात और सोचिये कि—वर्तमानकाल में अधिक से अधिक स्त्री पुरुष रोग ग्रस्त होते हैं। तब अस्पतालों में जाना पड़ता है। डाक्टर सभी स्त्री या पुरुषों का हाथ पकड़ते हैं पेट में हाथ लगाते हैं गुप्त प्रगट अनेक बाते पूछते हैं। विशेष रोग होने पर आप्रेशन करना पड़ता है तब डा० सभी अङ्गों को स्पर्श करता है। यहाँ तक कि गुप्त अंगों का भी आप्रशन करना पड़ता है तब डा० सभी अंगों को स्पर्श करता है। यहाँ तक कि गुप्त अंगों का भी आप्रेशन होता है। तथापि यह धारण रखना कि गुरुजनों के चरण स्पर्श करने से धर्म नष्ट हो जायेगा भारी भूल है।

बार-बार ऐसा सुना जाता है कि अमुक ग्राम नगर या शहर में अमुक सन्त ने अमुक की बहू बेटी के साथ अनुचित आचरण किया। अथवा किसी के घर में चोरी करवादी है॥ परन्तु विचार किया जाये कि क्या सन्त ऐसा घृणित कार्य करेंगे। ये सब कार्य चोर एवं ठगों के हैं। जो केवल लोगों के ठगने के ही लिये सन्तों का वेष बनाये हैं। ऐसे लोगों को खूब सावधानी से पहचानना चाहिये। तब व्यवहार करना चाहिये। सन्त बाहर भीतर से एक ही रहनी रखते हैं। जिनकी बात और व्यवहार न मिलता हो, उनसे व्यवहार नहीं करना चाहिये॥ लेखक—

पं० श्रीरामकुमार दासजी महाराज रामायणी। मानस तत्वान्वेषी, वेदान्त भूषण द्वारा लिखित मानस में नारी दीक्षा नामक पुस्तक में संग्रहित, प्रमाणों को पाठकगण समाहितचित से अवलोकन करें। मानस में नारीदीक्षा पृष्ट ४ से प्रारंभ श्लोक नं २ से—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्य माप्यते ॥ (शुक्ल यजुर्वेद १६। ३४) अर्थात् जब जीव भगवत् प्राप्ति का व्रत=संकल्प लेता है, तब उस ॥ व्रतेन=संकल्प से उसे, दीक्षायाम्=पंच संस्कार पूर्वक भगवन्मन्त्र की दीक्षा ॥ आप्नोति=प्राप्त होती है। भगवत् कृपा से उसे योग्य गुरु की प्राप्ति होकर उन भगवत् स्वरूप श्रीगुरु से भगवन्मन्त्र मिलता है ॥ दीक्षाया दक्षिणाम् आप्नोति=भगवन्मन्त्र प्राप्त होने पर भगवत् निष्ठा भावना रूपी राजश्री परमैश्वर्य प्राप्त होता है ॥ दक्षिणा (दक्षिणाया)=रस भावना रूपी ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर, श्रद्धाम आप्नोति=अपनेइष्ट में श्रद्धा=रस की निष्ठा दृढ़ होजाती है ॥ श्रद्धया=दृढ़निष्ठा—रस भावना के परिपक्व हो जाने पर उसे, सत्यम् आप्नोति—सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म—रस भावनानुकूलता सत्यस्वरूप पर ब्रह्म की अखण्ड प्राप्ति होजाती है।

॥ पृ० ८ दीक्षा शब्द को निरुक्ति अर्थात् दीक्षा शब्द का अर्थ ॥

दी—दी का अर्थ है, भगवान् के रूप, स्वरूप, गुण, विभव आदि का चरमज्ञान—जिसके आगे और कोई ज्ञान प्राप्त करना शेष नहीं रहजाता। तथा, क्षा—क्ष (संचलने) समस्त पाप समूह नष्ट होजाता है। इसी से पंडित लोग—भगवन्मन्त्र क्रिया को दीक्षा कहते हैं ॥१॥ जो समस्त पापों का नाश करके भगवत् तत्त्व का दिव्यज्ञान देनेवाली क्रिया है। महात्मा विद्वान लोग उसे दीक्षा कहते हैं। २–दीयते चरमं ज्ञानं क्षीयते पाप पंजरः। आब्रह्मभुवनस्याथ तस्माद्दीक्षोच्यते बुधैः ॥ १ दिव्य ज्ञानं यतोदद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम्। तस्माद् दीक्षेतिसाप्रोक्ता देशिकैस्तत्त्व कोविदैः ॥ २

पृ० ६—यथा कांचनता याति कांस्यं रस विधानतः। तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम् ॥ पितृ गोत्री यथा कन्या स्वामि गोत्रेण गोत्रिका। तथैव विष्णु मन्त्रेणचाच्युत गोत्रेण गोत्रिका ॥ यह तो सर्वजनिक नियम हुआ। अब पाठक गणविशेष रूप से स्त्री दीक्षा के ही सम्बन्ध में पढ़ें। कुछ लोगों ने शातातप स्मृति के नाम से यावत्यर्णानिमन्त्रादेः स्त्री शूद्रेभ्योदापयेत। तावत्यो ब्रह्महत्यांहः स्वयमाह प्रजापतिः ॥ यह श्लोक लिखा है, परन्तु कई स्थलों से प्रकाशित शातातप स्मृति में

१२—दीक्षिता स्त्री प्रसंगे न जायते दुष्ट रक्तदृक् । सपातक विशुद्धयर्थं प्राजापत्यं द्वयं चरेत् ॥ (शातातपस्मृति अ० ५ श्लोक ३४) अर्थात् भगवन्मन्त्र की दीक्षा प्राप्त स्त्री जिस समय भगवदाराधन मन्त्र जाप आदि में संलग्न हो,—उस समय स्त्री प्रसंग (मैथुन) करने वाले को वह पाप लगता है जिसके करने से पुरुष दूषित रक्त जन्य रोग (गर्मी, टी० बी० आदि) होता है । अतः उस पाप से छूटने के लिये उस पुरुष को दो प्राजापत्य व्रत करना चाहिये । इस श्लोक में "दीक्षिता स्त्री" लिखकर जोर दार शब्दों में स्त्री दीक्षा की पुष्टि की गई है । कुछ अन्यत्र के प्रमाण—

१३—तांत्रिकेषु च मन्त्रेषु दीक्षायां योषितामपि । साध्वीनामधिकारोऽस्ति, शूद्राणां चैव सद्धियाम् ॥ (हरि भक्ति विलास १-६१) अर्थात्—तांत्रिक साधनाओं में और भगवन्मन्त्र दीक्षा में, साध्वी—पतिव्रत परायणा सधवा स्त्रियों और सद्बुद्धि वाले अर्थात् भगवत्प्रेमी शूद्रों का भी भगवन्मन्त्र लेने का अधिकार है ।

१४—अगस्तसंहितायां श्रीराममन्त्रमुद्दिश्च—ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान सत् शूद्रान्सस्त्रियोऽपिवा । विष्णुभक्तिरतान् साधून् दीक्षयेद्विधिना गुरुः ॥ भगवत् भक्ति में रत (श्रद्धा करने वाले) ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, सद्बुद्धि वाले शूद्रों और सधवा स्त्रियों एवं अनान्य सज्जनों (अन्त्य जादिकों) को भी गुरु विधि पूर्वक (पंच संस्कार युक्त) श्रीराम मन्त्र से दीक्षित करें । पुनश्च—

१५—शुचिव्रततमाः शूद्रा धार्मिका द्विज सेवकाः । स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ लोकाश्चाण्डालपर्यन्ता सर्वेप्यत्राधिकारिणः ॥ (अग० सं० ८।१५) पवित्रव्रत प्रवीण, धर्मनिष्ठ—और द्विज सेवा परायण शूद्रगण, पतिव्रता स्त्रियाँ एवं अन्यान्य प्रतिलोमज और अनुलोमज, चाण्डाल प्रभृति सभी श्री राम मन्त्र प्राप्ति के अधिकारी हैं ॥

१६—क्रमदीपकायां गोपालमन्त्रमुद्दिश्यः—सर्वेषु वर्णेषु तथाऽऽश्रमेषु, नारीषु—नानाह्वयजन्मभेषु । दाताफलानामभिवांछितान् हि, द्रावेग गोपालक मन्त्र एष ॥ सभी वर्णों के नानाकुलों जातियों में जन्म लेने वाले, तथा सभी आश्रमों में रहने वाले, पुरुषों एवं स्त्रियों को श्री गोपाल मन्त्र शीघ्र मनोवांछित फल प्रदात करता है ॥

१७—बृहद् गौतमीयेः—गृहस्था वनगाश्चैवयतयो ब्रह्मचारिणः । स्त्रियःशूद्राद-यश्चैव सर्वे मन्त्राधिकारिणः ॥ अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थी, और विरक्त यति सभी आश्रमों में रहने वाले, सभी वर्ण के स्त्रियों एवं पुरुषों को भगवन्मन्त्र लेने का अधिकार है ॥ पुनः १८ बृद्धहारीत स्मृतौ—ब्राह्मणाः क्षत्रीयाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथैव । मन्त्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्तशरणायदि ॥ (३।६) चारों वर्णों एवं चारों

आश्रमों के सभी स्त्री और पुरुषगण यदि भगवत् शरणागति ग्रहण की इच्छा रखते हों, तो वे भी भगवन्मन्त्र प्राप्त करने के अधिकारी हैं ॥

१६—(पंचसंस्कार संग्रहोक्त) पाराशरस्मृतौ—प्रथमं तापसंस्कारस्तापसैर्मु-निभिः—स्मृतम् । सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च द्विजसत्तम । अर्थात् हे ! द्विज सत्तम सभी वर्ण तथा सभी आश्रम के स्त्री एवं पुरुषों को मुनितापस अर्थात् विरक्तों से ही पंचसंस्कार पूर्वक भगवन्मन्त्र लेना चाहिये ॥

२०—अक्षरात्रप्रकरणे—विद्याधर ! मनुष्येषु वैश्या शूद्रा स्त्रियोऽन्त्यजाः । सर्वे ऽधिकारिणोऽप्यत्र विष्णु भक्तो यथा नृपः ॥ अर्थात् हे विद्याधर मनुष्यों में सभी वर्ण वाले, वैश्य, शूद्र, नृप—क्षत्रीय, अन्त्यज और स्त्रियाँ सभी इस विष्णु भक्ति श्री वैष्णव मन्त्र के अधिकारी हैं ॥ श्रीरामसार संग्रहे—

स्त्रियश्च वार्षिकेकाले दीक्षयेद् विधिना गुरुः ॥ ७१ ॥ किसी भी वार्षिक उत्सव के समय (विरक्त) गुरु स्त्रियों को मन्त्र देवें ॥ साधक प्रश्नोत्तर मालायाम् ।—

२२—यो भवति (पालयति) यासूतेयेन विद्योपदिश्यते । जेष्ठो भ्राता च भर्ता च पंचैते गुरवः स्मृतः ॥ २३—मन्त्रेणान्तर्विशुद्धिश्च, पति सेवा सहायता । पत्युश्च सेवया मुक्तिरित्यर्थं मन्त्र सेवनात् । अर्थात् जो स्त्रियाँ भगवन्मन्त्र लेती हैं, उससे उन्हें पति सेवा में सहायता मिलती है । भगवन्मन्त्र युक्त पति की सेवा से स्त्री को मुक्ति प्राप्त होती । केवल पति सेवा से तो पतिलोक अर्थात् स्वर्ग तक की ही प्राप्त है । और भगवान् श्री हरि का मन्त्र जप करते हुये पति सेवा से भगवत् कृपा से भगवत् धाम में प्रभु की प्रियता प्राप्त होती है ॥ पृ० ११—

२४—सभर्तृका वा विधवा विष्णभक्ति करोति या । समुद्धरति चात्मानं कुलमे-कोत्तरं शतम् ॥ (ब्रह्माण्ड पुराणे) सधवा या विधवा जो भी स्त्री श्रीविष्णु भगवान् की भक्ति करती है । वह अपनी आत्मा तथा अपने सौ पीढ़ी का उद्धार करती हैं । अस्तु सौभग्यवती तथा विधवा सभी देवियों को हरिभक्ति करनी चाहिये ।

२५—आपस्तम्बसूत्रे— ब्राह्मणो वा एष जायते यो दीक्षते, तस्माद्राजन्यवैश्या अपि ब्राह्मणा इत्येवावेदयति ॥ जो कोई भी वर्ण दीक्षा लेता है, वह ब्राह्मण हो जाता है । इसी से क्षत्रिय वैश्यों को भी दीक्षा लेने पर ब्राह्मण कह देना आवेदन (मुनादी) करता है । (साधक प्रश्नोत्तर माला के लेखक एवं प्रकाशक हैं पं० श्री रामहरिदास जी शास्त्री, शाहजहाँपुर वाटिका, रमणरेती बृन्दावन)

२६—मन्त्र संस्कार सिद्ध्यर्थं मन्त्रदीक्षा विधं तथा । उद्वाह समये स्त्रीणां पुंसां चैवोपनायने ॥ (पराशर स्मृति उत्तर खण्ड अ० १–२२ द्विजाति पुरुषों को उपनयन

(यज्ञोपवीत संस्कार) के वाद एवं स्त्रियों को विवाह के समय या प्रथम ही पंच संस्कार विधिपूर्वक भगवन्मन्त्रदीक्षा प्राप्त करने से शीघ्रही सिद्धप्राप्त होती है ।।

२७—ब्रह्मक्षत्र विशः शूद्राः स्त्रियश्चान्तरजास्तथा । सर्व एव प्रपद्येन सर्वधातारमच्युतम् ।। न जाति भेदं न कुलं न लिगं न गुणक्रियाम् । न देशकालौ नावस्थां योगो ह्ययमपेक्षते ।। भरद्वाज संहिता अ० १-१४-१५ ।।

सभीवर्ण एवं अन्त्यज तक के स्त्री पुरुष भगवन्मत्र ग्रहण करके भगवत् शरणागत हों (ऐसी शास्त्राज्ञा है) १४ ।। भगवत् मन्त्र लेने के लिये जाति भेद, कुल भेद स्त्री पुरुष लिंग भेद, पावनापावन देश भेद, काल-मास नक्षत्र, दिन तिथि आदि का भेद और वाल युवा बृद्ध अवस्था का भेद की अपेक्षा (विचार) नहीं करना चाहिये ।

२६—ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रोनारी तथेतरः । चक्राद्यैरंकयेद् गात्रमात्मीयस्याखिलस्य च ।। (भारद्वाज संहिता अ० ३-५६ ।। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र इतर अन्त्यज स्त्री पुरुषों को भगवन्मन्त्र दीक्षा देने के पूर्व शंख चक्र धनुषबाणआदि भगवदायुधों से उसके अंग बाहु को अंकन करे ।

३०—तस्माच्चक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेद् द्विजः । सर्वाश्रमेषु बसतां स्त्रीणाँ श्रुतिनोदनात् ।। (बृद्ध हारीतस्मृति अ० २-३३) श्रुतिका संकेत [नोदना - प्रेरणा) तो ऐसी है कि सभी आश्रमों के द्विजाति स्त्री पुरुषों को भगवान् का धनुर्वाण चक्रादि तप्त आयुधों को धारण करना चाहिये ।। यदि भगवत् भक्ति करके कृतार्थ होना हो ।

पृ० १२ नं० ३१—गोमती तन्त्र प्रथम अध्याय में गौतमजी ने नारदजी से प्रार्थना की है कि—भगवन् ! कामदा मन्त्रा शूद्रास्त्र्याद्यधिकारकः । येनसर्वफलावाप्तिः, सर्वेषां बन्धुरेव च ।। ६ ।। सर्ववर्णाधिकारश्च, नारीणां योग्य एव च । तं ब्रूहि भगवन्मन्त्रं, मम सर्वार्थसिद्धये । ७ । हे भगवन् ! जो मन्त्र सभी कामनाओं का पूर्ति करने वाला हो. जिसमें स्त्री शूद्रादि का भी अधिकार हो, जिस मन्त्र से सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति हो जाती हो, जो सबका हितकारक हो ।। ६ ।। जिस मन्त्र में सभी वर्णों का अधिकार हो, और जो मन्त्र स्त्रियों के भी योग्य हो, मेरी सभी कामनाओं को पूर्ति के लिये, आप मुझे उस मन्त्र का उपदेश कीजिये।७।।

३२—नारद पाँचरात्रीय जयाख्य संहिता के सोलवें पटल में नारदजी ने भगवान् से प्रार्थना किया कि—श्रोतु मिच्छामि भगवन् ! दीक्षा लक्षणमुत्तमम् । नैष्टिकानां तथा स्त्रीणां, शिशूनांभाविनात्ममाम् ।।

हे भगवन् ! दीक्षा के उत्तम लक्षण सुनने की मेरी इच्छा है । जो ब्रह्म-

चारियों तथा स्त्रियों, बालकों एवं सभी भावुकों के लिये आवश्यक हों ॥ इस पर बड़े विस्तार से विधि बताकर तब भगवान् ने कहा कि—३३—अविरुद्धाँस्तथाऽक्लिष्टान, स्त्रीं बालानां च नारद । स्त्रीणां विशेषतो दद्यात, पतिभक्तिसमन्वितान् ॥ ना० पा० रा० ज० सं० प० १६-श्लोक ३३० ॥ हे नारदजी ! [यह श्रीराममन्त्र] शास्त्रानुकूल और अत्यन्त सरल है । स्त्रियों, बालकों को उपयोगी है, विशेषत: पतिव्रतास्त्रियों को अवश्य लेना चाहिये ॥ नोट—मन्त्र जापक स्त्री की सन्तान भगवत् कृपा से सुशील एवं भगवत् भक्ति परायण होगी ।

३४—पुरुषं वा स्त्रियं वापि दीक्षयेत् सूर्यमण्डले ॥ भविष्य पुराण ब्रह्माण्ड-खण्ड अ० १।६ श्लोक २२॥ दीक्षित स्त्री अथवा पुरुष सूर्यमण्डल मार्ग से परमधाम को प्राप्त होते हैं ।

३५—नास्ति येषां गुरुर्नॄणां नारीणां वापि मन्त्रदः । न तेषां वदनं वीक्ष्यते, गतिश्चैषां न विद्यते ॥ शा० स० अ० २४—६७ ॥ जिन पुरुषों एवं स्त्रियों ने भगवन्मन्त्र की दीक्षा न ली हो, उनका मुख नहीं देखना चाहिये । उनकी उत्तमगति नहीं होती है ।

३६— यद्यदीक्षारतास्तास्तु देयादीक्षातदा प्रभो (रुद्रयामल—६८-४८)

३७—स्त्रिया सहैव कर्तव्यं, गृहस्थस्य विधानतः । संस्कारपंचकं येन, भवेत् सा धर्मचारिणी ॥ (बृहद् ब्रह्म संहिता) गृहस्थ पुरुष को अपनी पत्नी के साथ ही-साथ पंचसंस्कार पूर्वक भगवन्मन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिये । इससे वह स्त्री धर्म-चारिणी होती है । इसलिये बुद्धिमान सज्जनों को उचित है, कि वह अपनी स्त्री को किसी योग्य महान पुरुष, विरक्त सदाचार परायण भगवत् भक्ति रसरंजित चित्तवाले संत से भगवन्मन्त्र की दीक्षा दिलादें । स्त्री को गुरु नहीं बनाना चाहिये, इस भारी भ्रम में भूले रहना उचित नहीं है । भगवन्मन्त्र बीज है जिज्ञासु स्त्री पुरुषों का हृदय सुन्दर भूमि है । श्रीगुरुदेव कृषक समान कान में मन्त्र सुना करके मन्त्ररूपी बीज बोते हैं तब सतसंग रूपी जल पाकर भाव रूपी अंकुर निकलता है, सदाचार ही खाद है उससे भावरूपी वृक्ष बढता है, जीवन में संयम नियम फूल फल हैं । और भगवान श्रीहरि के चरणों में प्रेम होना उसभाव रूपी पेड़ के फलों का रस है । स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकायें युवा, वृद्ध, सभी के जीवन में रस की परमा आवश्यकता एवं माँग है । तब विचारिये कि रस के अभाव में किसी का भी जीवन पूर्ण नहीं हो सकता है । तब बेचारी स्त्री भगवत् रस के बिना कृतार्थ कैसे होगी ॥ पृ० १३-१४ पुस्तक से लिखा गया है ।

१५—व्रतं कुरु महाभागे. त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । तस्माद्गृहाणगिरि, ! हरेर्मंत्रं सुदुर्लभम् ॥ (ब्रह्म वैवर्त पुराणगणपति खण्ड अ० ४ श्लोक ३१-३६) हे महाभागे तीनों लोकों में दुर्लभ ब्रत करो ॥ ४।३१ ॥ इसलिये हे गिरिजे प्रथम अत्यन्त दुर्लभ भगवन् मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करो ॥ ३-३६ ॥ इसी बात को पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के अध्याय २५४ में श्री वशिष्ठ जी ने राजा दिलीप को कुछ विस्तार के साथ बताया है । देखिये रुद्र उवाच—

गुरूपदेश मात्रेण, पूजयित्वैव केशवम । प्राप्नोति वांच्छितं सर्वं नान्यथा भूधराहमजे ॥ ७ ॥ हे गिरिजे ! जो गुरु के मन्त्रोपदेश मात्र से भगवत् पूजन करता है, वह समस्त मनोवांच्छित फलों को प्राप्त करता है । मेरा वाक्य अन्यथा नहीं है ॥७॥ वशिष्ठ जी ने बताया कि हे राजन्—एवमुक्ता तदा देवी, वामदेवान्तिकं नृप । जगाम् सहसा हृष्टा, विष्णुपूजन लालसा ॥ ८ ॥ समेत्य गुरुं तं देवी पूजयित्वा प्रणम्य च । विनीता प्रांजलिर्भूत्वा उवाच मुनि सत्तमम ॥ ९ ॥ शिव जी के ऐसा कहने पर देवी श्री पार्वती जी भगवत्पूजन की लालसा से प्रसन्नचित्त से तुरन्त श्री वामदेव महर्षि के निकट गईं ॥ ८ ॥ उन मुनि श्रेष्ट वामदेव जी को गुरु बनाने के लिये उनके समीप जाकर नम्रता पूर्वक प्रणाम पूजन किया, और हाथ जोड़कर बोलीं ॥ ९ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन, सम्यगाराधनं हरेः । करिष्यामि द्विज श्रेष्ठ, त्वमनुज्ञातु मर्हसि ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आप की कृपा से मैं भगवान् श्री हरि का सविधि पूजन करना चाहती हूँ । इसलिये हे द्विज श्रेष्ठ ! आप मुझे आज्ञा (दीक्षा) दीजिये ॥ १० ॥ श्री वशिष्ठ जी बोले कि—इत्युक्ता तदादेव्या, वामदेवो महामुनिः । तस्यै मन्त्रवरंश्रेष्ठं, ददौ सविधिना गुरुः ॥ ११ ॥ देवी श्री पार्वती जी के ऐसा कहने पर तब महामुनि श्री वामदेव जी ने श्री पार्वती जी को विधि पूर्वक परम श्रेष्ठ भगवन्मन्त्र देकर उनके गुरु बने ॥ ११ ॥ भागवत स्कन्ध ४ अ० ३ श्लोक १३ में सती जी ने शिव जी की प्रार्थना की है कि—कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं, निशम्य देहः सुखर्य नेगते । अनाहुता अप्यभियान्ति सौहृदं, भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ यहाँ पति गुरु और पिता इन तीनों के घर बिना बुलाये जाने को धर्म सम्मत कहती हैं । यदि स्त्रीको गुरु बनाना निषेध होता, तो गुरु के घर जाना कैसे कहतीं । श्री रामचरित मानस में इस श्लोक का अनुवाद है । यथा—जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा । जाइय बिनबोले न सँदेहा ॥ बा० का० दो० ६२ पं० ५ पृ० ६- वाल्मीकीय रामायण में महाराज श्रीदशरथ जी के साथ श्री कौशल्या जी आदिक रानियों का दीक्षा लेने का स्पष्ट वर्णन है ।—ततः गत्वा ताः पत्नी, नरेन्द्रं हृदयंगमाः । उवाच दीक्षां विशत, येयक्ष्ऽहं सुतकारणात् ॥ बा० रा० बा०

कां० सर्ग ८ श्लोक २४ ॥ वहाँ यज्ञस्थल में जाकर राजा श्री दशरथ जी ने अपनी तीनों रानियों से कहा कि—(अब श्री वशिष्ठ जी से) दीक्षा ग्रहण करो । मैं पुत्र के लिये यज्ञ करूँगा ॥ यज्ञवाटं गताः सर्वे, यथा शास्त्रं यथाविधिः । श्री माँश्च पत्नी भिराजा दीक्षामुपाविशत् ॥ वा० रा० वा० कां० १३ सर्ग ४० श्लोक ॥ सब कोई यज्ञमण्डप में गये । वहाँ जाकर राजा श्री दशरथ जी ने अपनी सभी (प्रधान तीनों) रानियों समेत (श्री वशिष्ठ से) दीक्षा ग्रहण की ॥ यह तो पति पत्नी की साथ साथ दीक्षा हुई । अब कुमारी कन्याओं के मन्त्र दीक्षा लेने का प्रमाण देखिये । श्री पार्वती जी ने विवाह के पूर्व ही श्री नारद जी से शिवमन्त्र की दीक्षा ग्रहण की थी । शिव पुराण रुद्र संहिता पार्वती खण्ड अध्याय २१ में श्री पार्वती जी ने श्री नारद जी से कहा कि—त्वंतु सर्वज्ञ जगतामुपकारकरं प्रभो । रुद्रस्याराधनार्थाय मन्त्रं देहि मुने हि मे ॥ ३१ ॥ नहि सिद्धयति क्रिया कापि, सर्वेषां सद्गुरुं विना । मयाश्रुता पुरा सत्या, श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ३२ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः, पार्वत्या मुनिसत्तमः । पंचाक्षरं शम्भु मन्त्रं, विधिपूर्वमुपादिशः ॥ ३३ ॥ हे मुने ! आप सर्वज्ञ हैं । संसार का उप-कार ही किया करते हैं अतः हे प्रभो ! श्री शंकर जी का आराधन करने के लिये, मुझे मन्त्र दीक्षा दीजिये ॥ ३१ ॥ सनातनी श्रुति कहती है कि—(श्रोत्रिय एवं ब्रह्म-निष्ठ) सद्गुरु के विना, किसी विद्या, (क्रिया) की सफलता नहीं होती । यह मैंने सुना है ॥ ३२ ॥ श्री पार्वती जी की ऐसी प्रार्थना सुनकर मुनिवर श्री नारद जी ने विधि पूर्वक श्री शिव जी का पंचाक्षर मन्त्रोपदेश किया ॥ ३३ ॥ पृथा (श्रीकुन्तीजी) जब कुमारी कन्या थीं, तभी श्री दुर्वासा जी ने उन्हें मन्त्र दिया था । देखिये महाभा-रत आदि पर्व अध्याय ११० श्लोक ६ ॥ तस्यै स ददौ मन्त्रमापद्धर्मान्वि वेक्षया ॥ पुनः स्कन्द पुराण ब्रह्मोत्तर खण्ड अध्याय ३ के श्लोक एक तथा २० देखिये । तस्मात् सर्वप्रदो मन्त्रः, सोऽयं पंचाक्षर स्मृतः । स्त्रीभिः शूद्रैश्चै संकीर्णैर्धा र्यते मुक्ति कांक्षिभिः ॥ ३–१–२० ॥ यह पंचाक्षर मन्त्र सब कुछ देने वाला है । इसलिये भुक्ति मुक्ति चाहने वाले द्विजातियों के अतिरिक्त संकीर्ण (वर्ण शंजर अन्त्यज) स्त्री और शूद्र आदि सभी को मन्त्र लेना चाहिये ॥ २० ॥

पृ० १७—अतः सद्गुरुमाश्रित्य, ग्राह्योऽयं मन्त्र नायकः । पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यः, सद्यः सिद्धि प्रयच्छति ॥ २४ ॥ अतः श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ गुरु की शरण में जाकर मन्त्रराज प्राप्त करे । यदि शीघ्र ही सिद्धि चाहे तो श्री अयोध्या जी, जनकपुर, चित्रकूट, वृन्दावन, काशी, प्रयाग, हरिद्वार आदि पुण्य क्षेत्रों (पवित्र स्थानों) में जाकर विधि पूर्वक श्री मन्त्रराज का जप करे ॥ २४ ॥

इसी अध्याय में कथा है कि—पुराकाल में अर्थात् पुराने समय में मथुरा नरेश दाशार्ह का व्याह काशी नरेश ने अपनी कन्या कलावती के साथ करदिया, राजा दाशार्ह ने रानी कालावती का अंग बलात् स्पर्श किया, तो वह तप्त लौह [गरम लोहे] के पिण्डवत् जलता हुआ मालूम पड़ा, तब राजा ने कारण पूछा कि—कथमग्निसमं जात वपुः पल्लवकोमलम् ॥४३॥

परम सुकुमार तुम्हारा शरीर अग्नि के समान गर्म क्यों हैं ॥ तब रानी कलावती ने बताया कि—राजन् ! ममपुरा बाल्ये, दुर्वासा मुनि पुङ्गवः शैवीं पंचाक्षरीं विद्यां, कारुण्येनोपदिष्टवान ॥४५॥ हे राजन् ! कई वर्ष पूर्व जब मैं छोटी बालिका थी, उस समय मेरे माता पिता के कहने पर, मुनिश्रेष्ठ श्रीदुर्वासाजी ने मुझे श्री शिवजी का पंचाक्षरी मन्त्र दिया था ॥४५॥ इसी गुरुमन्त्र के प्रभाव से पापी मुझे स्पर्श नहीं कर सकते हैं (और आप मद्यपान, पर स्त्रीगमन, वेश्या गमन, मांस भक्षण एवं मिथ्या भाषण आदि पापों से दूषित हैं। नित्य स्नान नहीं करते, ईश्वराराधन मन्त्र जप भी नहीं करते, तब मुझ कैसे छू सकते हैं। ऐसा सुनकर जब राजा ने रानी से ही मन्त्र दीक्षा देने को कहा तब रानी ने बताया कि—नाहं तवोपदेशं वै, कुर्यां मम गुरुर्भवान। उपातिष्ठ गुरुं राजन, गर्गं मन्त्र विदांवरम ॥ ५० ॥ इति संभाष माणौ तौ, दम्पती गर्गं सन्निधिम्। प्राप्य तच्चरणौ मूर्ध्ना, ववन्दाते कृतांजली ॥५१॥ गुरुवर्यमनुप्राप्य मुदितौ तौ च दम्पती ॥६०॥

हे राजन ! आप मेरे पति देव होने से गुरुजनों के समान पूज्य हैं। अतः मैं आपको मन्त्रोपदेश कैसे कर सकती हूँ। मेरे गुरुदेवजी श्रीदुर्वासाजो तो इस समय पता नहीं कि कहाँ विचरण कर रहे हैं। अतः यहाँ राजधानी में ही निवास करने वाले, मन्त्र तत्त्व विशारदों में श्रेष्ठ, श्रीगर्गाचार्यजी के पास चलकर; आप दीक्षा ग्रहण कीजिये ॥ ५० ॥ इस प्रकार विचार करके, दम्पति (राजारानी) दोनों श्रीगर्गाचार्य के पास जाकर कृताञ्जलि होकर चरणों में भेट पूजा रखकर) उनके चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किये। ५१॥ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ गुरु से दीक्षा पाकर वे दम्पति (राजारानी) दोनों बहुत प्रसन्न हुये। ६०॥

अतः पति पत्नी में परस्पर एक दूसरे को मन्त्रदीक्षा नहीं देनी चाहिये। और स्त्रियों को पिता से भी मन्त्रदीक्षा नहीं लेनी चाहिए। यह शास्त्रीय विधान है, फिर भी कुछ हठवादी व्यक्ति हठकरके ऐसा कहते हैं कि—स्त्री का तो पति ही गुरु है। किन्तु शास्त्रों में पति अपनी पत्नी को मन्त्रदीक्षा दे; ऐसा विधान नहीं है। मन्त्रदाता तो पिता के समान पूज्य होजाता है। यदि पति ही पत्नी को मन्त्रदीक्षा देवे तो वह भी

उस स्त्री के पिता समान हो जायेगा, तब फिर स्त्री पुरुष का सम्बन्ध समाप्त हो जायेगा । मन्त्र देने के बाद यदि पति अपनी पत्नी से समागम करेगा तो पुत्री के साथ समागम करने का महान पापात्मा माना जायेगा । इसलिये पति अपनी पत्नी को स्वयं मन्त्र दीक्षा नहीं दे सकता । देखिये ब्र० वै० पु० ब्र० ख० अ० २४

पत्युर्मन्त्रं न गृह्णीयाद्वै विचक्षणः ।। ४३ ।। यदि वे गृहस्थाश्रम में रहते हों अर्थात् विरक्त न हो गये हों, तब पति और पिता से मन्त्र दीक्षा नहीं लेना चाहिये । किन्तु यदि स्त्री के पिता एवं पति विरक्त होकर वन में रहकर भगवत्भजन करते हों, तो उनसे मन्त्र दीक्षा ली जा सकती है। क्यों कि उनके जागतिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं । तब केवल जीव कल्याण मात्र की भावना ही शेष रहती है। अपनापन गल जाता है । और जब तक पति को काम बासना पूर्वक पत्नी से प्यार करता है, तब तक किसी भी प्रकार वह पत्नी का गुरु नहीं हो सकता है । एक बात का विशेष ध्यान रहे कि—श्री वशिष्ठ जी, पाराशर जी, आदि जब वाणप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट हो गये थे—तब उनके पुत्रों ने उनसे मन्त्र दीक्षा ली थी ।

पृ० १८—[अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽयं मन्त्रनायकः] सधवा अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियाँ तीर्थ, व्रत, उपवास, दान आदि सभी कार्य एवं मन्त्र दीक्षा पति से आज्ञा माँग कर करें । और बुद्धिमान पुरुष को भी उचित है कि वह अपनी पत्नी को मंगल कामना की भावना से उसे अपनी सेवा करने के बाद भगवत् भजन पूजन करने की सहर्ष अनुमति प्रदान करे । यदि पत्नी भगवत् भक्ति करनी चाहती है, किन्तु पति मना करेगा तो पति को भी प्रायश्चित्त लगेगा । यह सर्वथा सत्य है कि श्री हरिभजनन किये बिना पति या पत्नी दोनों में से किसी को जन्म मरण के चक्र से मुक्ति नहीं मिलेगी । हाँ पति की सेवा से पति प्रसन्न रहेगा तो मरने पर स्वर्ग तक जा सकती है । पुण्यक्षीण के बाद पुनः संसार चक्र में आना पड़ेगा । विचार कीजिये कि पतिव्रत का पालन करना तपस्या है, तपस्या से मुक्ति प्राप्त होती है ऐसा शास्त्रीय प्रमाण नहीं है ।। तपस्या से तो ब्रह्मलोक तक का वैभव ही प्राप्त हो सकता है । भगवत् प्राप्ति या मुक्ति तो ब्रह्म [भगवान् श्री हरि] की उपासना से ही होना संभव है। अन्यथा नहीं ।

स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन, कर्त्तव्यं धर्मबर्द्धनम् । विधवाभिश्च कर्त्तव्यं, मोक्ष-सौख्याभिवर्द्धये ।। स्कन्द पु० वैष्णव ख० कार्तिक माहात्म्य अ० ३२ श्लोक ५३ ।। सौभाग्यवती स्त्री को पति की आज्ञा से धर्म करने पर उसका फल कई गुना बढ़ जाता है। मोक्षसुख प्राप्त करने के लिये विधवा स्त्री को भी श्री हरि भजन करना चाहिये ।।

नोट—उपर्युक्त श्लोक में लिखा है कि पति की आज्ञा से पत्नी धर्म करेगी तो कई गुना फल बढ़ जायेगा। तब बुद्धिमान पति का परम कर्त्तव्य है कि वह अपनी सेवा से अवकाश पाने पर अपनी पत्नी को सद्धर्म कर्म करने की सत शिक्षा दे, भगवत् भजन में लगावे, तभी पति पत्नी का कल्याण कर सकता है। अन्यथा संभव नहीं है।

मन्त्र महार्णव में देखिये—

यदि पूजाद्यशक्ता स्याद् द्रव्या भावेन सुन्दरि। केवलं जपमात्रेण पुरश्चर्या विधीयते ॥ नियमा पुरुषो ज्ञेयो न योषित सु कदाचन। न न्यासा योषितानां च न ध्यानं च पूजनम् ॥

द्रव्य के अभाव से विस्त्रित रूपेण पूजा और पुरुश्चरण करने की शक्ति न हो, तो केवल भगवन्मन्त्र का जप ही से पुरश्चरण हो जाता है। अंगन्यास करन्यास, अक्षरन्यास आदि पूर्वक ध्यान पूजन का नियम केवल पुरुषों के लिये ही है स्त्रियों के लिये नहीं ॥ केवलं जपमात्रेण मन्त्रासिद्धतियोषिताम् ॥ केवल जपमात्र से ही मन्त्र स्त्रियों को सिद्धि देता है। अथवा केवल मन्त्र जप से ही स्त्रियों को सिद्धि प्राप्त होती है ॥

दक्षिणपथ के बाष्कल ग्राम में रहने वाली, 'बन्दुला नामक पतिता ब्राह्मणी की कथा वर्णित है, कि जिसने गुरु दीक्षा लेकर अपना और अपने पति का उद्धार किया, उसकी कथा स्कन्ध पु० में विस्तार है ॥

पृ० ९६ में—इत्थं सद्गुरुमाश्रित्य सा नारी प्राप्त सन्मतिः। दध्यौ मुहुर्मुहुः शम्भोश्चिदानन्दमयं वपुः ॥ १ ॥ गुरु सुश्रूषणरता त्यक्तापत्य सुहृज्जनाः। गुरुपदिष्टे-योगेन शिवमेवमतोष यत् ॥ २ ॥ इस प्रकार सद्बुद्धि पाकर वह स्त्री बार बार शंकर जी के चिन्मय विग्रह का ध्यान करती हुई ॥ १ ॥ पुत्र परिवारादि सुहृज्जनो को छोड़ कर गुरु की सेवा में लग गई, और गुरु जी के बताये योग्य (अनुष्ठान) से शिव जी को प्रसन्न कर लिया ॥ २ ॥ ब्रह्मवैवर्त पु० के चतुर्थ श्री कृष्ण जन्म खण्डान्तरगत नहुषोपाख्यान के इन्द्र दर्पभंग अध्याय ५६ में बर्णन है कि—नहुष के कारण उपस्थित महाविपत्ति के समय में इन्द्राणीशची ने अपने गुरु की कृपा से निस्तार पाया। शोकार्णवे निमज्जन्ती हृदयेन विदूयता। तुष्टाव भीता स्वगुरुं ब्रह्मनिष्ठं च कृपानिधिम ॥ १३८ ॥ मन्त्राद्युद्गारिणैव गुरुरित्युच्यते बुधैः। अन्यो वन्द्यो गुरु यमन्यश्चारोपितो गुरुः ॥ १४६ ॥ अदीक्षितस्य मूर्खस्य निष्कृतिर्नास्ति निश्चितम् ॥ १४८ ॥

॥ ॐ नमः श्री सद्गुरवे ॥

श्री गुरुअर्चन पद्धति

अज्ञान—निद्राशयित जीव के लिये सर्व प्रथम भगवती श्रुति का उद्बोध है कि उठो, जागो, सद्गुरु की प्राप्ति कर स्वस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो। तदनन्तर श्रुत्यनुसार जीव श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के पास अत्यन्त दैन्य भावापन्न होकर जाता है एवं आत्म समर्पण कर अर्चा विग्रह की भाँति ब्रह्मतया षोडशोपचार पूजन करता है, जो आत्म-बोध का परम कारण होता है।

प्रस्तुत गुरु अर्चा पद्धति में गुरु अर्चा के मंत्र हैं जिनका सरल हिन्दी टीका कर सर्व सामान्य के लिये सुलभ कराने का तुच्छ प्रयास किया गया है।

ध्यान—सीताराम समारम्भां, रामानन्दार्य मध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरु – परम्पराम् ॥

अर्थः—(जड़ चेतनात्मक समग्र विश्व के परम कारण) श्री सीताराम जी महाराज से प्रारम्भ होने वाली एवं जिसके मध्य में जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य हैं तथा जो हमारे सद्गुरुदेव पर्यन्त स्थित हैं, ऐसी श्रीगुरु-परम्परा को प्रणाम करता हूँ ॥१॥

आवहन मंत्र—आगच्छन्तु महाभागाः सीताराम परायणाः।
पूजां गृह्णन्तु मद्दत्तां भगवत्प्रीति हेतवः ॥
नमोऽस्तुवोऽस्मदाचार्याः इहागच्छत तिष्ठत।
निर्दिष्टे स्वस्थाने स्थित्वा गृह्णन्तु मम पूजनम् ॥

अर्थः--हे महाभाग ! आप सब श्री सीताराम जी महाराज के उपासक हैं एवं भगवत्प्रीति की प्राप्ति के परम कारण हैं, अर्थात् बिना आपकी कृपा के भगवत्प्रेम मिलना कठिन है, अतः मेरे द्वारा दी गई पूजा ग्रहण करें ॥२॥ हे हमारे आचार्य गण ! हम आपको नमस्कार करते हैं, आप यहाँ पधारें। अपने निर्दिष्ट स्थान (चौकी में बनाये गये प्रकोष्ठ) में स्थित होकर मेरी पूजा ग्रहण करें ॥३॥

आसन मंत्र—सुवर्ण रचितं दिव्यं दिव्यास्तरण शोभितम्।
आसनं हि मयादत्तं गृहाणाचार्य पुङ्गव ॥

अर्थः--हे आचार्य प्रवर ! स्वर्ण निर्मित एवं दिव्य आस्तरण (बिछावन) से सुशोभित, हमारे द्वारा दिया गया दिव्यासन आप ग्रहण करें ॥४॥

पाद्यसमर्पणमंत्र—इदं पाद्यं मयादत्तं दिव्यं सुप्रीत वाहकम्।

गृहीत्वा सुस्थितो भूत्वा पाद-प्रक्षालनं कुरु ॥

अर्थः--मेरे द्वारा दिये गये इस दिव्य एवं प्रीति वर्धक पाद्य को ग्रहण करके सुन्दर ढंग से विराज कर चरण प्रक्षालन करें ॥५॥

अर्घमंत्र—दिव्यौषधि रसोपेतं दिव्य सौरभ संयुतम्।

तुलसी पुष्प दर्भाढ्यमर्घ्यम्मे प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः--श्रेष्ठ औषधियों के रसों से युक्त एवं सुन्दर सुगन्ध से युक्त, जिसमें तुलसीदल, पुष्प एवं कुश मिला हुआ है, ऐसे मेरे अर्घ्य को आप ग्रहण करें ॥६॥

आचमनमंत्र—सुगंध वासितं दिव्यं निर्मलं सरयूदकम्।

गृहाणाचमनं नाथ! पार्षदैः सह सद्गुरो ॥

अर्थ--हे श्रेष्ठाचार्यदेव! दिव्य गंध से सुवासित, निर्मल सरयू जल को ग्रहण कर अपने परिकरों के साथ आचमन करें ॥७॥

मधुपर्क मंत्र—नमो वै गुरुवर्याय तत्वज्ञान प्रदर्शिने।

मधुपर्कं गृहाणेम प्रसन्नोभव शान्तिद ॥

अर्थः--हे शान्ति प्रद! तत्वज्ञान का दर्शन कराने वाले एवं सद्गुरु आपको नमस्कार है। आप प्रसन्न होइये और इस मधुपर्क को ग्रहण करिये ॥८॥

पंचामृत स्नानमंत्र—पञ्चामृतं मयानीतं पयोदधि घृतं मधु।

युतं शर्करया देव! गृहाण मम सद्गुरो ॥

अर्थ--हे सद्गुरो! हे देव! दूध दही, घृत, मधु एवं शक्कर से युक्त मेरे द्वारा लाये गये पंचामृत को आप ग्रहण करिये ॥९॥

शुद्धोदक स्नानमंत्र—दिव्य तीर्थहृतै स्तोयैस्सर्वौषधि समन्वितैः।

स्नापयामि च त्वां भक्त्या स्नानीय प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः--दिव्य तीर्थों से लाये गये एवं सर्वौषधियों से युक्त जल से मैं आपको भक्ति पूर्वक स्नान कराता हूँ आप इस स्नानीय जल को ग्रहण करिए ॥१०॥

वस्त्र समर्पणमंत्र—संतप्त काञ्चन प्रख्यं पीताम्बरं वरं प्रभो।

गृहाणेदं मयादत्तं गुरुवर्य नमोऽस्तुते ॥

अर्थः--तपाये गये स्वर्ण की तरह देदीप्यमान श्रेष्ट यह पीताम्बर जो मेरे द्वारा दिया गया है, हे प्रभो ! आप ग्रहण करिये। हे आचार्यवर ! आपको नमस्कार है ॥११॥

यज्ञोपवीत अर्पण मंत्र—यज्ञोपवीतं सौवर्णं मयादत्तं जगद्गुरो।
गृहाण सम्मुखो भूत्वा प्रसीद करुणानिधे ॥

अर्थः--हे जगद्गुरो ! स्वर्ण तन्तुओं से निर्मित, मेरे द्वारा दिया गया यह यज्ञोपवीत, आप हमारे सम्मुख होकर ग्रहण करें - और हे करुणानिधान ! आप प्रसन्न होइये ॥१२॥

आभूषण समर्पण मंत्र—तेजसं रत्न संयुक्तं दिव्यालङ्करणं शुभम्।
महार्हञ्च मयादत्तं भूषणं प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः--तेजस्तत्व से समुद्भूत, रत्नों से युक्त, अंगों को अलंकृत करनेवाले, शुभ, दिव्य एवं अत्यन्त कीमती आभूषण जो मेरे द्वारा दिया गया है, आप ग्रहण करें ॥१३॥

सुगन्ध समर्पण मंत्र—प्रधान देवनीयश्च सर्वमङ्गल कर्मणि।
गृह्यताञ्च दयासिन्धो गन्धोऽयं सुरभिप्रदः ॥

अर्थः--हे दयासिन्धो ! सभी मङ्गल कार्यों में जो प्रधान द्रव्य माना जाता है, ऐसा सुगन्ध से युक्त यह गन्ध ग्रहण करें ॥१४॥

चन्दन समर्पण मंत्र—मलयाचल सभूतं शीतमानन्द वर्धकम्।
काश्मीर घन साराढ्यं चन्दनं प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः— मलयाचल में उत्पन्न होनेवाला, शीतल एवं आनन्दवर्धक, तथा केशर कपूर से युक्त चन्दन ग्रहण करें ॥१५॥

उत्तरीयवस्त्र समर्पण मंत्र—नमः श्री गुरूवर्याय नमः मङ्गल मूर्तये।
उत्तरीय मिदं वस्त्रं गृहाण करुणानिधे ॥

अर्थः— मंगल मूर्ति श्री आचार्य प्रवर के लिये नमस्कार है। हे करुणा-निधान ! इस उत्तरीय वस्त्र को आप ग्रहण करें ॥१६॥

तुलसी समर्पण मंत्र—कोमलानि सुगन्धानि मञ्जरी संयुक्तानि च।
तुलस्या सुदलान्येव गृहाण भगवत्प्रिय ॥

अर्थः--हे भगवत्प्रिय ! कोमल एवं सुगन्धित मञ्जरी युक्त 'तुलसीदलों को आप ग्रहण करें ॥१७॥

पुष्प माला समर्पण मंत्र—सौरभाणि सुमाल्यानि सुपुष्प रचितानि च ।
नाना विधानि पुष्पाणि गृह्यतां जगतां गुरो ॥

अर्थः—हे जगद्गुरो ! सुगन्धित एवं सुन्दर पुष्पों के द्वारा रचित मालायें एवं नाना प्रकार के पुष्पों को आप ग्रहण करें ॥१८॥

दूर्वा-पत्र-पुष्पांकुरादि समर्पण मन्त्र—

दूर्वादल समायुक्तं पत्रं पुष्पं सहांकुरम । यवं तिलं महाभाग ! गृह्यताम पार्षदैः सह ॥

अर्थः—हे महाभाग ! पत्र पुष्पांकुरादि के सहित दूर्वादल एवं तथा तिल को पार्षदों के साथ ग्रहण करें ॥१९॥

धूप समर्पण मंत्र—वनस्पति रसोत्पन्नं सुगंधाढ्यं मनोहरम ।
धूपं गृहाण ज्ञानीश ! प्रसन्नो भव शान्तये ॥

अर्थः--हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! वनौषधियों के रसों से निर्मित सुगन्धित एवं मनोहारी धूप को आप ग्रहण करें तथा हमारी शान्ति के लिये प्रसन्न होवें ॥२०॥

दीप समर्पण मन्त्र—घृतवर्ति समायुक्तं कर्पूरादि समन्वितम ।
दीप गृहाण विघ्नेश ! मम सिद्धि प्रदोभव ॥

अर्थ--हे विघ्नों के नायक ! कपूर इत्यादि द्रव्यों एवं घृत की बाती से युक्त दीपकों आप ग्रहण करें तथा मेरी सिद्धियों को देने वाले होंवे ॥२१॥

नैवेद्य समर्पण मंत्र—पूप मोदक संयाव पयः पक्वादिकं वरम् ।
यथाशक्ति मयादत्तं नैवेद्यं प्रति गृह्यताम ॥

अर्थः--पूप (पूआ) लड्डू, हलुवा, दूध ऐवं श्रेष्ठ पकवानों को जो यथा शक्ति मेरे द्वारा दिये गये हैं, ऐसे भोग को आप ग्रहण करें ॥२२॥

जल समर्पण मन्त्र—शीतलं स्वादु शुद्धश्च परातृप्तिकर जलम ।
समस्त जगतामीश ! प्रीत्यर्थं प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः—हे समग्र विश्व के स्वामी ! शीतल, स्वादिष्ट, शुद्ध एवं अत्यन्त तृप्ति देने वाले जल को हमारी प्रीति रक्षण के लिये आप ग्रहण करें ॥२३॥

आचमन मंत्र—सर्वौषधिरसोपेतं सौरभं सरयूदकम् ।
आचम्यञ्च मयादत्तं गृहाण करुणानिधे ॥

हे करुणानिधान ! सर्वौषधियों के रस से युक्त अतः सुगन्धित सरयू जल आचमन के लिये मेरे द्वारा दिया गया है अतः इसे आप ग्रहण करें ॥२४॥

फल समर्पण मंत्र—इदं फलं मयादत्तं स्थापितं पुरतस्तव ।
गृहीत्वा देहि मे भक्ति भगवत्प्रीति कारिणीम् ॥

अर्थः--मेरे द्वारा दिया गया यह फल आपके सामने रखा है अतः आप इसे ग्रहण करके भगवान् की प्रीति प्रदान करने वाली भक्ति मुझे प्रदान करें ॥२५॥

ताम्बूल समर्पण मंत्र—ताम्बूल पूग संयुक्तं चूर्ण खदिर संयुतम् ।
लवङ्गादि युतं चैव भक्ति भाक् प्रति गृह्यताम् ॥

अर्थः--हे भक्ति भाजन गुरुदेव ! सुपाड़ी, चूना, कत्था एवं लवङ्ग आदि मशालों से युक्त ताम्बूल ग्रहण करें ॥२६॥

नीराजन समर्पण मंत्र—कर्पूरवर्ति संयुक्तं गोघृतेन सुपूरितम् ।
नीराजनं गृहाणेदं कृपया भक्तवत्शल ! ॥

अर्थ--हे भक्तवत्सल ! गाय के घी से पूरित एवं कपूर की बत्तियों से युक्त इस नीराञ्जन (आरती) को आप कृपा पूर्वक ग्रहण करें ॥२७॥

पुष्पांजलि मंत्र—मणि सौवर्ण्य माल्यैश्च युक्तं पुष्पाजलिं प्रभो ।
संगृहाणास्मदाचार्य कृपया भक्तवत्शल ॥

अर्थः--हे भक्तवत्सल हमारे आचार्यदेव ! मणि एवं सोने की मालाओं से युक्त इस पुष्पाञ्जलि को आप कृपा करके ग्रहण करें ॥२८॥

श्री फल समर्पण मत्र—श्री फलं स्वादु दिव्यञ्च सुधाधिकतरं प्रियम् ।
सदक्षिणं गृहाणेद प्रणतार्ति हरप्रभो ॥

हे प्रपन्न दुख भञ्जन प्रभो ! अमृत से भी अधिक प्रिय, स्वादिष्ट तथा दिव्य इस श्री फल (नारियल) को दक्षिणा के साथ आप ग्रहण करें ॥२९॥

प्रार्थना—अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शित येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अर्थः—अखण्ड मण्डल (गोलाकार) के आकार वाला एवं जड़ चेतनात्मक समग्र विश्व जिस ब्रह्म की सत्ता से व्याप्त है, उस ब्रह्म के पाद-पद्मों का दर्शन जिनके द्वारा कर लिया गया है ऐसे श्री गुरुदेव जी को नमस्कार है ॥३०॥

भावाम्बुधौ सन्तत साश्रु मग्नं; लीला रसज्ञं रसिकावलम्बम् ।
सन्तेषु पूज्यं मृदु गौर मूर्ति. वन्दे गुरुं तं परमं शरण्यम् ॥
संसारसिन्धौ पतितो ह्यगाधे, मोहान्ध पूर्णे विषयातिशक्तः ।
कृपावलम्बं मम देहिनाथ; हे गौर हे सुन्दर हे समर्थ ॥
न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके; सहस्र शोयन्नमया व्यधायि ।
सोऽहं विपाकावसरे कृपालो; क्रन्दामि सम्प्रत्य गतिस्तवाग्रे ॥
न धर्मनिष्ठोऽस्मिन चात्मवेदी; न भक्तिमान्स्तव चरणारविन्दे ।
अकिञ्चनोऽनन्य गतिः शरयं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥
अभूतपुर्वं ममभाव किं वा सर्वं सहे मे सहजं हि दुःखम् ।
किन्तु त्वदग्रे शरणागतानां पराभवो नाथ न तेऽनुरूपम् ॥

अपराध क्षमापन मंत्र—आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम ।
पूजनं नैव जानामि त्वं गतिः जगतां गुरो ॥

अर्थ– हे जगद्गुरु ! मैं, न तो आवाहन करना जानता और न विसर्जन करना जानता एवं न पूजा करना ही जानता ही हूँ. एक मात्र आप ही मेरी गति हैं ॥३१॥

प्रदक्षिणा मंत्र—यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे ॥

अर्थः--जो कुछ भी पाप जन्म जन्मान्तर में मेरे द्वारा किये गये हैं वे सभी प्रदक्षिणा के पग-पग में नष्ट हो जावें ॥३२॥

ले०—मानस मधुकर, श्री अभिलाष प्रसाद त्रिपाठी एम०ए०बी०एड० व्याकरणशास्त्री

इस प्रकार श्री गुरु पूजन कर स्वस्थ चित्त से निवेदन करे कि हे श्री गुरुदेव जी आप हमें कृपा करके अर्थ पचक ज्ञान का उपदेश दीजिये । तब प्रसन्न हृदय से उदारता पूवक आचार्यगण इस अर्थ पंचक का उपदेश देते हैं । प्रेमीजन सावधान चित्त से रसास्वादन करे ॥

अर्थ पंचक–प्रथम–पर प्राप्य १

अर्चान्तर्यामी विभव, व्यूह परात्पर पाँच । प्राप्य सुवर्णें शास्त्र सब, मिलत बात सब साँच ॥१॥ पर व्यूह विभव अन्तर्यामी अर्चा ये ५ प्रकारसे परमात्मा प्राप्य कहा जाता है । दो०—तत्पदवाच्य परात्पर, रामचन्द्र सम्राट ! नित्य वास साकेत में, लीला नाम विराट ॥२॥ प्राप्यता की सीमा परात्पर रूप श्री सीताराम जी सब अवतारों के राजाधिराज हैं । जो अपने नित्य श्री साकेत धाम में रहते हैं । आपकी लीला स्वरूप नाम से विराट प्रगट होते हैं ॥ षट भग पूरण ब्रह्मनित उर प्रेरक निज तन्त्र । मधुर महा ऐश्वर्य पर, राम रमावै मन्त्र ॥३॥ श्री सीताराम जी ब्रह्म हैं । अर्थात् अणोरणीयान् महतो महीयान इस कठोपनिषद १-२-२० मन्त्र के अनुसार महतो महीयान तो आद्याशक्ति श्री सीता जी हैं । और अणोरणीयान उर प्रेरक रघुवंश विभूषण श्री राम जी हैं । अतः श्री सीताराम भगवान् हैं । पोषण भरण आधार शरण्य सर्वव्यापक कारुण्य ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य तेज वीर्य यश श्री उत्पत्ति प्रलय पालन गति अगति विद्या अविद्या धर्म अधर्म सत्य प्रकाश चैतन्य आनन्द धाम लीला शब्दस्पर्श रूप रस गंध दिव्य कर्त्तुम् अकर्त्तुम् अन्यथाकर्त्तुम् सामर्थ्य मर्य्यादा अमर्य्यादा स्वतन्त्रता अनुराग वैराग्य प्राप्य प्रापक विभूति बन्धन मोक्षदाता शील सौहार्द वात्सल्य क्षमा कीर्ती भर्ता भोक्ता महेश्वर दृढ़ विरदावली सम्पन्न अभयदाता दृढ प्रतिज्ञ श्री राम जी स्वतन्त्र उर प्रेरक होते हुये भी तहामाधुर्य की सोमा भो आप ही हैं । अर्थात सब में रमना सबको रमाना यह आपका श्रीरामनाम महामन्त्र है । जिसे श्री शंकर जी जपते हैं । जिनसे अनन्त ईश्वर उत्पन्न होते हैं । ये प्राप्य हैं । अब उत्पन्न हुये ईश्वरों के नाम बताते है ।

प्राप्यव्यूह २–वासुदेव शंकरषणरु प्रद्युम्न स्वनिरुद्ध । पाद विभूती चार यह व्यूह भेद श्रुति शुद्ध ॥४॥ श्री वासुदेव शंकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध ये चार पाद विभूति स्वरूप हैं । इन्हीं चारों को चतुर्व्यूह वेद शास्त्र बतलाते हैं ।

प्राप्यविभव३–मीन कमठ वाराह नृहरि, ये अवतार महान । शक्त्या वेश प्रधानयुत, विभव भेद बहु जान ॥५॥ भगवान् के मत्स्य वाराह कमठ नरसिंहादि जितने भो अवतार हैं, जो कि शक्ति आवेशादि विविध अवतार हैं । उनको विभवावतार कहा जाता है ।

निराकार पररूपको, तेजैश्वर्य महान । ज्ञान शक्ति बल बीज विभु, व्यापक जन हित मान ॥६॥ अन्तरयामी परमात्मा का तेज बल ऐश्वर्य ज्ञानशक्ति है । जो

जड़ चेतनात्मक जगत में उर प्रेरक की प्रेरणा से सन्धिनी, सन्दीपनी, आह्लादिनी शक्तियों को प्रेरणा करते हैं। वे परात्पर परमात्मा ही भाववश्य होकर तुरियावस्था में आकर भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करते हैं। उर प्रेरक होकर सन्धिनी शक्ति से जीवईश सम्बन्ध जोड़ने के लिये गुरु बनकर सम्बन्ध जोड़ते हैं। सन्दीपनीशक्ति को प्रेरणा करके भजन करने वालों को अनुभव देते हैं। आह्लादिनी शक्ति को प्रेरणा करके भक्तों को विचित्र ऐश्वर्य देते हैं।

अर्चाविग्रह प्राप्य ५:-दारु शैल मृण द्रव मनसि, वसन चित्र तनरूप। सालिग्राम प्रत्यच्छ प्रभु, भाव साध्य सुअनूप ॥७॥ भक्तोंके भावानुसार भगवानके काष्ठ, पाषाण मिट्टी, अष्ट-धातु मानसी मूर्ति (भाव मय विग्रह) वस्त्रमूर्ति, चित्रपट या बालकों की शृङ्गारमयी लीला मूर्ति अर्थात् (भगवान् के झाँकी स्वरूपों) की उपासना करने पर भगवान् प्रत्यक्ष दर्शन सुख का अनुभव देते हैं। और श्री सालिग्राम जी का रूप तो स्वयं भगवान् ही धारण किये हैं। इस प्रकार ये ५ रूप से परमात्मा का स्वरूप प्राप्य कहा जाता है। धाम रूप लीला सहित प्रभु के नाम अनेक। भक्त हृदय सौन्दर्य जस पाँच अवस्था टेक ॥८॥ अर्थात् भक्तों के भावानुसार भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम अनन्त हैं। परन्तु भक्तों के भावना की सुन्दरता से जाग्रत, स्वप्न सुसुप्ति, तुरिया इन चार अवस्थाओं मात्र में ही पता लगता है। वास्तव में भगवान् तो तुरियातीत अवस्था में ही नित्य रहते है। जिनका केवल शास्त्र से ही पता लगता है। तर्क का समा-वेश नहीं होता। अब द्वितीय प्रापक' की व्याख्या की जाती है— बद्ध मुमुक्षु मुक्त पुनि, नित्य और कैवल्य। पाँच भेद यह जीवके, नाम काम वैशल्य ॥१॥ बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त, कैवल्य और नित्य ये पाँच प्रकार के जीव कहे जाते हैं। इन पांचों नाम भेदों में कार्यों को ही विशालता है। जो कार्य संकल्प से होते हैं।

प्रापकनित्य पार्षद १:—नित्य पार्षद अङ्ग सिय, पियगुन दिव्य स्वरूप। रुचि माधुर्य स्वरूप बहु, सम ऐश्वर्य अनूप ॥२॥ नित्य पार्षद श्री सीताराम जी के दिव्य गुणों के स्वरूप माने जाते है। यथा--राघवस्य गुणो दिव्यो महाविष्णु स्वरूपवान्। वासुदेवो घनीभूतो तनु तेजो महांशिवः। (श्रीराम नवरत्न से) अर्थात् श्री रघुनाथ जी के दिव्य (भाग) गुण श्री महाविष्णु कहे जाते हैं। श्रीराम जी के शरीर की श्यामता गुण वासुदेव कहे जाते हैं। और श्री विग्रह के तेज गुण महांशम्भु कहे जाते हैं। जो कि ये तीनों श्री सीताराम जी की रुचि अनुसार महामाधुर्य लीलाओं में श्री सुभगा जी श्री विमला जी व श्री चारुशीला जी रूप होकर नित्य सेवा में रहते है।

तथा मर्यादिक चरित्रों में श्री भरत जी श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमानजी रूप धारण करते हैं। इसी प्रकार प्रिया प्रीतम की रुचि अनुसार ऐश्वर्य में महाविष्णु वासुदेव महा-महाशम्भु रूप धारण कर त्रिपाद विभूति के ऐश्वर्य का प्रकाश करते हैं। इसी प्रकार सीताराम जी के और भी अनन्त दिव्यगुण अनन्त पार्षदों का रूप धारण करते हैं। ये सभी गुण सभी पार्षद श्री सीताराम जी की लीला और धाम के स्वरूप कहे जाते हैं। अतः परमात्मा का धर्म पार्षदों के रूप में परिणत होकर अनन्त लीलायें करते हैं। ये पार्षद ही भगवान् की रुचि पाकर जगत में ईश्वर बनकर जगत व्यापार करते है। परमात्मा तो कार्य कारण से परे भर्ता भोक्ता महेश्वर हैं ॥१॥

प्रापक कैवल्य २:-- नित्य सच्चिदानन्द में, खोया स्वप्न विचार। इन्द्री विषय विमोह तजि, ब्रह्मतत्त्वहिं चितधार ॥३॥ निर्गुण निराकार चैतन्य स्वरूप आत्मा को सच्चिदानन्द ब्रह्म मानकर यदि ईन्द्रिय विषयों का विमोह सम्यक प्रकार (भलीभाँति) त्याग सका, तब तो प्रारब्ध निवृत्ति के पश्चात् कैवल्य मोक्ष हो जायेगा। क्योंकि आत्मा प्रकृति के संग से प्राकृत और भगवत् संग से भगवान् के गुण पाकर तद्रूप हो जाता है। वास्तव में आत्मा में कोई गुण नहीं है। यह कैवल्य मोक्ष है।

प्रापक मुक्त ३--भोक्ता भोग्य स्वरूप चित, सिय पिय सेवा पाय। मन्त्रराज तत्त्वज्ञ हो, नित्य धाम को जाय ॥४॥ भक्त भगवान् के साथ भोक्ता भोग्य स्वरूप का गुरु-परम्परानुसार अनुसन्धान पाकर जब भजन में लग गया, तब यह मन्त्रराज तत्वज्ञ कहा जाता है। अतः सत्य संकल्पमय होकर उस अवस्था में परमात्मा के समान रूप वाला पार्षद हो जाता है। प्रारब्ध निवृत्ति के बाद भगवत् धाम नित्य सेवा में चला जाता है। उसको मुक्त कहते हैं।

मुमुक्षु प्रापक ४:--सारासार विचार जग, द्वन्द सहत सत्संग। पंचक अर्थ अकार त्रय; नित अनुराग उमंग ॥५॥ सार और असार का विचार करके जो चेतन संसार में सुख दुख हानि लाभादि द्वन्दों को सहन करके सत्संग में मन लगाता है, वह अर्थ-पंचक अर्थात् प्राप्य परमात्मा प्रापक चेतनात्मा, प्राप्तिफल, सेवा का उपाय, कृपास्वरूप श्री गुरुदेव जी का विरोधी अहंकार ममता राग द्वेषादि त्याग करके पाँच अर्थों को ठीक से जानकर श्री गुरु महाराज से पंच संस्कार प्राप्त करना तब आकारत्रय सम्पन्न होना अर्थात् अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व अनन्य रक्षकत्व को अनुकूल संकल्प द्वारा धारण करना यह मुमुक्षु का शुद्ध स्वरूप है ॥५॥

बद्धजीव प्रापक ५:—जगशरीर सुख सत्य सब, इन्द्रिय विषय प्रमाण। पुरुषारथ विपरीतता, काम मोह षट प्राण ॥६॥ संसारी शारीरिक सुख को सत्य मानकर इन्द्रिय जन्य विषयों से आगे बुद्धिका न जाना, काम क्रोध मद मात्सर्यमें ही परम पुरुषार्थ

बनना. पापी हो अथवा पुण्यात्मा हो यह बद्धजीव का स्वरूप है ॥६॥ जीव प्राण वायू विषय, चेतन नित्य विचार । सत्य सुसंकल्पहि बिचर, सो सौन्दर्य सुधार ॥७॥ आत्मा को परमात्मा का शरीर कहा जाता है, जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश एक होता हुआ भी दो है । धर्म भूत प्रकाश आत्मा को स्वरूपभूत प्रकाशक परमात्मा ने सत्य संकल्पानुसार अनिर्वचनीय माया को उत्पन्न करके शीशा का लाल पीला हरादि प्रकृति के संकल्पानुसार परिवर्तन होने के कारण आत्मा पाँच भेद वाला होगया है । अतः अब संकल्प में शुद्धता आने के लिये यह बुद्धि की सुन्दरता अर्थपंचक की शिक्षा प्रगट की गयी है इसे भगवत् कृपापात्र ही समझेंगे। यथा—स्वाति का बुन्द सीपो में पड़ता है, तो मोती बन जाता है । फिर पानी नहीं होता है । वैसे ही भगवत्कृपा से भगवान् को प्राप्त जीव (भक्त) भगवत् पार्षद होते हैं । यदि स्वांती का पानी पानी में गिरता है, तो जैसे पानी होता है, वैसे ही कैवल्य मोक्ष समझो । यथा—जे ज्ञान मान विमत्त तवभव हरणि भक्ति न आदरी । ते पाय सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥ रा० च० मा० उ० कां० वेद स्तुति के । इस प्रमाण से कैवल्य मुक्ति के पश्चात् फिर किसी ब्रह्माण्ड में आत्मा का पतन होकर जन्म मरण सहना पड़ता है । और भगवत् रूप होकर भगवत् धाम में जाकर पार्षद हो जाते हैं । आत्मा ही स्वाति बुन्द है कृपारूप भगवत् धर्म सीपी है । अस्तु भगवत्धर्म रूपी सीपी के सम्पर्क से आत्मा रूपी स्वाति बुन्द का मोती होना है ॥७॥

तृतीय प्राप्तीफल का भेदः—आत्मा परमात्मा युगल, नित्य सच्चिदानन्द । क्या बिगड़ा क्या बना अब यह विचार सुखकन्द ॥१॥ जबकि आत्मा परमात्मा दोनों ही नित्य सच्चिदानन्द हैं । तो फिर अब क्या बिगड़ गया तथा अब क्या बनेगा, यह विचार परम सुख प्रद है । नित्य सेवा भक्तों की कीर्ति है ।—भोग्य विधाता भोग प्रभु, सुख ऐश्वर्य महान । प्रेरक रुचि सब कार्य को, कर्ता पार्षद मान ॥२॥ सब आत्मायें भोग्य वस्तु हैं । परमात्मा भोक्ता है, और प्रेरक तथा सबको अपने समान सुखदाता हैं । परमात्मा की प्रेरणा से आत्मा ही परमात्माको समस्त दिव्य और प्राकृतिक लीलाओं के विधान कर्ता विधाता हैं । आत्मा परमात्मा की रुचि से जगत के ईश्वर होकर अवतार भी लेते हैं । इस प्रकार से आत्मा को परमात्मा अपने समान सुख देते हैं। आत्मा का यही सुख अहंकार में बूड़ कर नष्ट होगया था । अब वही निर्गुण निराकार आत्मा, सगुण साकार परमात्मा के समान ऐश्वर्य मान होकर, परमात्मा की प्रेरणा से परमात्मा के लिये परमात्मा के निकट जाकर, परमात्मा का पार्षद होकर परमात्मा का अङ्ग बनता है । जैसे राजा का अङ्ग राज्य, सेना, कोष [खजाना] रानी और मन्त्री होते । इस प्रकार यह विधि बनेगी । इस विधि का नाम सामीप्य मुक्ति है । इस प्रकार परमात्मा भक्त वत्सल हैं ॥२॥

मोक्ष २:--निराकार निज ब्रह्मपन, विषय जीति यदि पाय। माया प्रभुकी झूठि कह, सो कैवल्यहिं जाय ॥३॥ अर्थात् आत्मा तो निगु ण निराकार और परमात्मा का अंश है। अतः सगुण सागर परमात्मा का शरीर होता हुआ भी, सत्य संकल्प होने के नाते यदि प्रभु की माया को झूठी कह कर भी विषयों को सम्यक् प्रकार जीत पाया, तो निर्गुण निराकार रूप में प्रवेश करके कैवल्य भाव को पा जाता है। परन्तु इस एक ब्रह्माण्ड के ब्रह्मादि तो कहते हैं कि मुक्त हो गया है। पर वेद कहते हैं कि करोड़ों ब्रह्माण्डों में फिर कहीं गिर जाता है। अतः यह मोक्ष कुछ ही समय समय के लिये कहने मात्र का है ॥३॥

काम ३:--कोटिकाम प्रतिअंग लज, सो जाको पति होय। अर्थ धर्म कामादि सुख, वमन विचारत सोय ॥४॥ अर्थात् अङ्ग अङ्ग प्रति लाजहि कोटि कोटि शत काम, ऐसे प्रभु श्री राम जी जिसके पति हों। उस अपने नित्यपति के अनुभवी भक्त के सामने कितना भी अर्थ धर्म काम का प्रभाव आ जावे तो भी वह भक्त लौकिक सभी सुख स्वाद तथा सौन्दर्यादि को उल्टी किया हुआ भोजन की भाँति त्याग देता है। जो रघुवीर श्री राम जी को हृदय में रक्खा है, वही जित काम होता हैं ॥४॥

धर्म ४:--शरणागति सब धर्म को, मूल अक्षय फल देत। जेहिवश रघुपति अभयकर, सन्त सुजानत हेत ॥५॥ अर्थात् जिसका जहाँ जन्म होता हैं, उसका धर्म भी वहीं से जन्मता हैं। शरीर का जन्म संसार से है। अतः लोकधर्म समान हैं। सोना, जागना, बैठना, उठना; खाना, पीना, शौचादिक क्रिया, रोग, दुख सुख सभी को होता हैं। आत्मा का जन्म परमात्मा से हैं, अतः सत सम्प्रदाय संयुक्त श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु हों, जब उनके शिष्यता द्वारा भगवति शरणागति से भगवत धर्म उत्पन्न हो। तो निर्गुण निराकार जो आत्मा हैं वह सगुण साकार परमात्मा का रूप होकर परमात्मा का रूप होकर परधामको जाता हैं। यह विशेष धर्म अक्षय पुण्य उत्पन्न करता है। अतः प्रभु के ऐसे प्रपन्न भक्त के लिये भगवान् का अभय वरदान है। इस मर्म को गम्भीर सन्त जानते हैं ॥५॥

अर्थ ५:--मरत ठान धन पाय नर समुझत सुरपति आप। सोइ सम्पति प्रहलाद ध्रुव चरण परी विन जाय ॥६॥ अर्थात् संसारी जीव धन सम्पति ऐश्वर्य को अर्थ कहते हैं। जिस धन के लिये मृत्यु को भी स्वीकार करके अथक परिश्रम के पश्चात स्वल्प रूप में (थोड़ा सा) पाने के बाद अपने को इन्द्र से भी बड़ा मानने लगते हैं। परन्तु भगवान् के कृपापात्र जब संसार से मुख मोड़ कर भगवान् का भजन करते हैं। तब भक्त के विना चाहे भगवत्कृपा से धन संपत्ति ऐश्वर्य सम्यक प्रकार प्रकार से भक्तों के चरणों में अपने आप आ पड़ता है। तथापि भक्त अपने को प्रभु

का दास ही मानते हैं ॥६॥ फल सौन्दर्य स्वरूप है, पिय प्यारी सुख हेत । कृपा साध्य गुरुदेव के, समुझत सब रस लेत ॥७॥ आत्मा का स्वरूप परमात्मा का भोजन है, इसका रहस्य श्री गुरुदेव कृपा से ही मिलता है ॥७॥

चौथा उपाय के ५ भेदः—गुरु अभिमान उपासना, भक्ति ज्ञान अरु कर्म । सत रजतम जस संग हो, तस समुझेगा मर्म ॥१॥ संग से ही सभी गुण होते हैं । सात्विक राजस तामस भेद वाले संगों से बुद्धि में उन संगों का भारी प्रभाव पड़ता है । १–आचार्याभिमान, २–प्रपति, ३–भक्ति । ये तीन भेद वाली उपासना तथा चौथा ज्ञान पाँचवा कर्मकाण्ड ये पाँच प्रकार के उपाय आत्मकल्यार्थ बताये जाते हैं । परन्तु इन पाँचों में भी तीन गुणों की विषमता से अनेक उपाय कहे जाते हैं । ये सभी उपाय क्रमशः भी सफल होते हैं । कभी कभी आकस्मिक एक से भी कार्य बन जाता है ॥१॥

१ आचार्याभिमानः—ईशअंश बहुकाल जिन, बिछुरत कीन्हों मेल । क्या देवैं तिन गुरुन को, समुझत तन मन फेल ॥२॥ परमात्मा का अंश यह जीवात्मा अनन्त-काल से परमात्मा को भूला हुआ था । अब श्री सीताराम जी की कृपा विग्रह श्री गुरुदेव जी ने भगवत् शरणागति धर्म देकर अपने परम प्राप्य उन परमात्मा से मिलने का अधिकार दिया (मार्ग प्रदर्शित किया) है । अतः इसके प्रत्युपकार रूप में श्री गुरू जी को आत्मा देकर भी उरिण नहीं हो सकता है । शरीर समेत सब सम्पत्ति दे देने पर भी कामधेनु के बदले गदही का देना जैसा ही है । अतः आत्मा अर्थात् प्रपन्न भक्त को आचार्यका रिणी मानकर आचार्य के आधीन रहे, तो इसे आचर्या-भिमान से ही परमात्मा वश में होते हैं । श्री हनुमान जी प्रमाण हैं । आजीवन अपने गुरुदेव सूर्य पुत्र सुग्रीव की सेवा किये ॥२॥

२ प्रपत्ति स्वरूप की उपासनाः--शेष भोग्य नित रक्ष्यता, निज परतन्त्र स्वरूप । करैं करावैं इष्ट मम, सर्वेश्वर सुख रूप ॥३॥ अनन्य शेषत्व अनन्य भोग्यत्व अनन्य रक्षकत्व का बोध हो । अर्थात मैं श्री सीताराम जी का अंश हूँ । एकमात्र वही मेरे स्वामी हैं । उन्हीं से हमारी सम्यक् प्रकार रक्षा होगी । वे समर्थ हैं । उनके अतिरिक्त मैं और किसी का भी नहीं हूँ । अन्य किसी से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है । मैं श्री सीताराम जी का परतन्त्र हूँ । मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ । मेरा बनने बिगड़ने का सब भार श्री सीताराम जी पर है । अन्य किसी से मेरा न तो कुछ बन सकता है, न बिग-ड़ेगा ही । मेरे रक्षक प्रभु श्री सीताराम जी सर्वेश्वर हैं । जो कृपामूर्ति सुख सागर एवं भक्तवत्सल हैं । मैं उन उदार शिरोमणि श्री सीताराम जी का परतन्त्र हूँ ॥३॥

३ भक्तिः—भक्त धर्म भगवान् गुरु, सेवा सार बिचार । तन मन धन सब अर्पि कर, कृपा चाह अनुसार ॥४॥ अर्थात् सन्त, गुरु, धर्म एवं भगवान् श्रीहरि इन चारों की सेवा ही सारवस्तु है । ऐसा निश्चय करके अपना सर्वस्व में अर्पस

करके केवल कृपा की चाह (इच्छा) मन में राखे कि स्वामी कब मेरी सेवा स्वीकार करेंगे । यही भक्ती है ॥४॥

४ ज्ञान विज्ञान:—जड़ चेतन परितत्त्व लखि, चित चैतन्य सम्हार । कामादिक तजि शुद्ध मन, निज सम्बन्ध सुधार ॥५॥ जड़ प्रकृति चेतन जीवात्मा तथा प्रेरक को यथार्थ जानकर जड़ता को त्याग कर प्रकृति को कामादिक विकारों से चित्त को हटा कर शुद्ध मन से आत्म परमात्म सम्बन्ध को सुधारना अर्थात स्वरूपाभिमान को प्राप्त करने की चेष्टा करना यह विज्ञान है । जड़ चेतन विभाग को समझना ज्ञान कहा जाता है । और आत्मा का ईश्वर से सम्बन्ध समझना विज्ञान कहा जाता है। केवल ज्ञान से कैवल्य मोक्ष होता है । और ज्ञान विज्ञान दोनों से भगवत्प्राप्ति होती है ॥५

५ कर्म:—योग यज्ञ व्रत ध्यान जप, तप तीरथ स्वाध्याय । अर्थ सुनिश्चित सोचिकर, तन मन दान सहाय ॥६॥ तन मन धन जन की सहायता से होने वाले, किसी भी अर्थ की कल्पना करके, जो भी कर्म योग यज्ञादि किये जाते हैं । उन्हें कर्म कहा जाता है ॥६॥ दो०—प्रेरक प्रभु सौन्दर्य जग, कठपुतली सब कोइ । चित इच्छा त्रय डोर मति, कर्म कहावै सोइ ॥७॥ यद्यपि प्रभु प्रेरणा से ही सारा जगत कठपुतली की भाँति चलता है । तथापि चित शक्ति चेतन होने से इच्छायें विविध काम कराती हैं । अतः जीव को कर्म का बन्धन हो जाता है । यही कर्म है । यदि चेतन की इच्छा भगवान् की लीलाओं में विलीन हो जाये । और प्रभु के कैंकर्य को समझ कर भावमयी सेवा करने लग जाये, तो कर्म समाप्त हो जाये ॥७॥

पाँचवा विरोधी पाँच:—कर्मविरोधी समझ बिन. कृत्य सफल नहिं होइ । ताते भेद उपाय के, विलग विलग लख सोइ ॥१॥ आचार्याभिमान-प्रपत्ति-भक्ति-ज्ञान-कर्म इन पाँचों उपायों के विरोधी कौन कौन हैं । इसको विना समझे कर्तव्य में विघ्न आ जाते हैं । अतः इन पाँचों विरोधियों को जान लेना परमावश्यक है ॥१॥ आचार्याभिमान विरोधी- निज पर रूप विचार तजि, विरदावलि क्या काम । नीति अनीति सुरीति नहिं, प्रभु सकुचावैं वाम ॥२॥ अपना स्वरूप क्या है । पर स्वरूप क्या है। यदि यह विचार नहीं हो, तब यह कहना कि प्रभु अपनाये हुये को नहीं त्यागते, तब आचार्य को भी अपनाये हुये जीवको त्यागना उचित नहीं है । आचार्यमें यह अवगुण देखना व्यर्थ है । यद्यपि यह प्रभु की विरदावली है कि अपनाये हुये को न त्यागना। तथापि विचार हीन को निर्पेक्षता आ जाती है तब वह कैसे समझेगा कि नीति क्या है अनीति क्या है । अतः आचार्याभिमान की रीति का पालन बिना किये प्रभु को संकोच में डालता है कि भक्त के अपनाये हुयेको भगवान अपनाते हैं । इस बात को न समझ कर टेढ़ी चाल चलता है । जिसका परिणाम-भयंकर होता है । अर्थात् अन्य उपायों को अपनाता है । यह भारी विपरीतता है । जो स्वरूप नाशक है ॥२

प्रपत्ति विरोधी--प्रेरक भर्ता राम तजि, बहुईश्वर मन लाग । अभय मिलत नाहिं जाप बहु; तबहुं न मूरख जाग ॥ अर्थात् अनन्त ईश्वरों को उत्पन्न करने वाले, सबके प्रेरक, भर्ता, भोक्ता प्रभु को त्याग कर, बहुत ईश्वरों में मन लगाता है ! तो भी अभय वरदान नहीं मिलता है । यद्यपि सकामता वश बहुत मन्त्रों का बहुत जप करता है । तथापि प्रभु को नहीं पाता है । तो भी मूर्खतावश जगाता नहीं है ॥३॥

भक्ति विरोधीः--जग सकामता दैव वश, समुझै नहिं अज्ञान । हरि सेवा तजि विकल जग, निज स्वारथ लपटान ॥४॥ हानि लाभ जीवन मरन यश अपयश ईश्वर के हाथ है ! मनुष्य अपनी प्रारब्धानुसार ही पाता है । तो भी अज्ञानता वश स्वार्थ सिद्धि में लगा हुआ जीव भगवान् को सेवा नहीं करता है । स्वार्थ वश कर्म बन्धन में पड़ता है ॥

ज्ञान विरोधीः--अहंकार कामादि षट, बुद्धि विकार समाज । निज स्वतन्त्रता सत्य गुनि त्यागत, नहिं ठगराज ॥५॥ शरीराभिमान काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य ये सब कुसमाज है, जो बुद्धि को आत्मज्ञान नहीं होने देता है । यद्यपि यह ज्ञान सभीको है कि यह कुसमाज ईश्वर की माया है । जीवात्मा परतन्त्र है । स्वतन्त्रता भ्रामक वस्तु है । तथापि स्वतन्त्रता को त्यागना नहीं चाहता है, ठगपन में मग्न रहता है ॥५

कर्म विरोधी—व्यापक, शक्ती ज्ञान बल, जन रुचि पालक राम । गुरुवानी विश्वास नहिं संशय भज छल काम ॥६॥ यद्यपि सर्वज्ञ सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान भक्तवत्सल हैं । भक्त को उपासनादि कर्म करने में निर्भयता से लगे रहना चाहिये । परन्तु गुरु-वाणी में विश्वास न होने से अनेक सकामता वश चचल हो जाता हैं ॥६॥ किंकर्तव्य विमूढ जग, इष्ट मिलन को चाह । ज्ञान भक्ति पुरुषार्थ लख, यह सौन्दर्य विचार ॥७॥ को न चहै जग जीवन लाहू । परन्तु क्या करें, इस प्रकार से सभी लोग मोह में पड़ जाते हैं । इसलिये यह लेख ज्ञान भक्ति पुरुषार्थ तीनों को दिखा देता हैं ॥७॥

अकारत्रय का विरोधीः--निज स्वतन्त्रता शेषहत, भोग्य विषय की आश । रक्ष्य अहंता प्रभु विमुख, कैसे हो प्रिय दास ।८॥ अनन्य शेषत्व में परतन्त्रता हैं, अनन्य भोगत्वमें निष्कामता हैं. अनन्य रक्षकत्व में निर्भयता हैं । परन्तु परतन्त्रता, सेवकता, निर्भयता दुर्लभ वस्तु हैं । सभी चेतनों में स्वतन्त्रता स्वामिपन तथा भय समाया हुआ हैं । यही अकारत्रय का विरोधी हैं ॥८॥

लेखक—अनन्त श्री जानकी शरण जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर श्री चारुशीला बाग, श्री जानकीघाट-श्री अयोध्या जी-उ०प्र० ।

ऊपर अर्थ पंचक तथा अकारत्रय तत्त्वत्रय इत्यादिका विषय प्रतिपादन किया गया हैं । यदि कोई सज्जन कहें कि ये तो आपके बनाये हुये दोहे हैं । अर्थपंचक

और अकारत्रय की आवश्यकता है। इसमें कोई शास्त्रीय प्रमाण देना चाहिये। अस्तु अब शास्त्रीय प्रमाणों को पढ़िये। श्रध्येय श्री त्रिदण्डी स्वामी जी के द्वारा प्रकाशित वार्तामाला के पृष्ट ३५ से—

अर्थ पंचक तत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कार संस्कृताः। आकारत्रय सम्पन्ना महाभागवतास्मृताः॥ अर्थपंचक तत्त्व को जानता हो, पंचसंस्कारों से संस्कृत हो, अर्थात् श्री सद्गुरुदेवजी के द्वारा पंचसंस्कार प्राप्त किया हो। अकारत्रय से सम्पन्न हो, उसको महाभागवत जानना चाहिये। यह श्लोक पाराशरीय धर्मशास्त्र उत्तरखण्ड अ० १० श्लोक ६ का है। पुन.—तत्त्वत्रय मनुस्मृत्य चिदचित्परमात्मकम्। चित्तत्त्वमात्मनो भाव्यं ह्यचिदात्मोपकारकम्॥ वृ० त्र० सं० प्र० पा० अ० १२ श्लोक ८॥ अर्थ--चित (जीवात्मा) अचित (प्रकृति) अन्तर्यामी अर्थात परमात्मा रूप से तत्त्वत्रय का स्मरण करता हुआ शरीर तत्त्व को आत्मा का उपकारक निश्चय करके, आत्मा के चैतन्य तत्त्व की भावना करे। और भी देखिये--तत्त्वत्रयात्मकं ज्ञानं रहस्यं धर्म उच्यते। यमलब्ध्वा-नरो नैति यत्पदं काल वर्जितम्॥ पा० ३ अ० ७ श्लोक ३। श्री ब्रह्मा जी कहते हैं कि हे मुनियों! इस तत्त्वत्रयात्मक ज्ञान को गूढ रहस्य कहा जाता है। जिस धर्म को विना प्राप्त किये मनुष्य कालवर्जित दिव्य परात्पर धाम में नहीं जा सकता है। पुनः--चिद अचित्परमात्मेति तत्त्वत्रय विचिन्तनात्। दैवं पित्र्यं च कुर्वन्ति ज्ञान पूर्वं निरन्तरम्॥ पा० ४ अ० ४ श्लो० ३२। जड़ (माया) चेतन (जीव) परमात्मा इन तीन तत्वों का विचार करता हुआ, वैष्णव निरन्तर दिव्य ज्ञानपूर्वक दैनिक (नित्य) पित्रिक कर्मों को भी करता रहे। और भी पढ़िये कि-- अकारत्रय सम्पन्नाः परमैकान्तिनोमताः। धन्याः सुदुर्लभालोके नित्यं तेभ्यो नमोनमः॥ पा० १ अ० ७ श्लो० ८५। जो अकारत्रय सम्पन्न होते हैं। उन्हीं को परमैकान्तिक भक्त माना जाता है। ऐसे भक्त लोक में अत्यन्त दुर्लभ हैं। उनको बारम्बार नमस्कार है। पुनः--प्रणवाकारतां प्राप्य रेखाभिः स्तिश्रिभिः सदा॥ पा० १ अ० १३ श्लो० ४२ पृ० ४५ से--प्रणव में अ उ-म-इन तीन अक्षरों से अनन्य शेषत्व, अनन्य भोगत्व, अनन्य रक्षकत्व कहा गया है। इसी बात को पा० १ अ० १३ के श्लोक २०६ में कहा गया है कि--प्राप्यं भोग्यं रक्षकं च यदेकं श्रुति बोधितम्। अर्थात् अनन्य शेषत्व, अनन्य भोग्यत्व अनन्य रक्षकत्व यह एक निश्चित मार्ग श्रुतियों के द्वारा कहा गया है। पुनः देखिये कि--

आधारत्वेन स्थितो विधातृत्वेन वा पुनः। शेषित्वेन चराजेन्द्र स च ऽऽत्मा मुक्तिमिच्छताम्॥ पा० ३ अ० ६ श्लो० ३६ पृ० १२२। मोक्ष की चाहना करनेवाले भक्तों के द्वारा आराध्य जो परमात्मा भक्तों के हृदय में आधार रूप से रक्षक विधाता रूप

से भोग्यता और शेषित्व रूप से अंशी होकर भक्त की आत्मा है। और भी देखिये- शास्त्रं विजानतां मध्ये कश्चिदेव नराधिप। प्रपन्नो जायते लोक अकारत्रय संयुतः॥ पा० ३ अ० ६ श्लो० ११२ पृ० १२५। शास्त्रोंको सम्यक् प्रकार जानने वाले विद्वानों में से कोई एक बिरला ही अकारत्रय सम्पन्न प्रपन्न लोक में उत्पन्न होता है। पुनः- अनन्य शेषतां चैव तथाऽनन्य प्रयोजनम्। अनन्य साधनत्वां च देवो मह्यं प्रयच्छतु। पा० ४ अ० ६ श्लो० ११५।—अकारत्रय सम्पन्न भक्त भगवान् से यह प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! आप हमको अनन्य शेषता अनन्य प्रयोजन और अनन्य साधन तत्व को देवें। और भी देखो कि—यजन्तु निखिलान्यागान्नाऽऽप्नोति परमं पदम्। न विद्या हीयते राजन् बिनाभक्ति जनार्दने॥ अकारत्रय सम्पन्ना यः भक्ति प्रोच्यते बुधैः। स्व-रूप विस्मृते राजन्यो दोषः समपद्यत॥ पा० ४ अ० ७ श्लो० ८४-८५ पृ० १६२। भले ही कोई सभी यज्ञों को विधिवत पूर्ण करले, और किसी भी विद्या की उसको कमी न रहे अर्थात् सभी विद्याओं का ज्ञाता हो जाये। परन्तु भगवान् श्रीहरि की भक्ति बिना किये भगवद्धाम को नहीं जा सकता है॥८५॥ अकारत्रय सम्पन्न भक्ति जो विद्वानों के द्वारा कही जाती है। उस स्वरूप की विस्मृति होने पर जो दोष उत्पन्न होता है वह दोष भगवत् चरण के आश्रित हुये बिना निवृत नहीं हो सकता है। यही बात महाभारत शान्ति पर्व में मोक्ष धर्म पर्व अ० ३२० श्लो० २७-२८ में कही गयी है।

पंचसंस्कार

अर्थपंचक तथा अकारत्रय एवं तत्वत्रय की बात पाठक पढ़ चुके अब पंचसंस्कारों की सांकेतिक चर्चा का रसास्वादन करिये।—जब कोई जिज्ञासु किसी महाभागवत के निकट जाकर भगवत् शरणागति प्राप्त करने की आतुरता प्रगट करे। वे महापुरुष उसे अधिकारी समझें तो उदारता पूर्वक पंच संस्कार प्रदान करें। यदि जिज्ञासु को अधिकारी न समझें तो पंच संस्कार प्रदान नहीं करना चाहिये। अनाधिकारी को दीक्षा देने से लाभ नहीं होता। अस्तु महापुरुषों को अधिकारी अनाधिकारी का विचार अवश्य करना चाहिये। पंच संस्कारों में प्रथम ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक है। द्वितीय तुलसी की कण्ठी, तृतीय मन्त्र संस्कार-चतुर्थनाम संस्कार और पंचम भगवदायुधों की छाप लगाना है। इन पंच संस्कारों का भी शास्त्रीय प्रमाण पाठक ध्यान से पढ़ें॥—

पुण्ड्रं मुद्रा तथा नाम माला मन्त्रश्च पञ्चमः। अमाहि पञ्चसंस्कारः परमैकान्त हेतवा॥ श्री रामपटल जगदीश प्रेस बम्बई से प्रकाशित गतिबोध उत्तरार्द्ध पृ० २१२। अर्थ--ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, धनुषवाण शंखचक्रादि भगवदायुधों की छाप, श्री वैष्णवीय परम्परागत नाम यथा--(श्री रामदास जी, श्री जानकीदास जी, श्री रामशरण) इत्यादि) तुलसी की माला (कण्ठी) और श्री सीताराम मन्त्र, श्री गोपाल मन्त्र,

श्री मन्नारायण मंत्र इत्यादि। ये श्री वैष्णव पंचसंस्कार निश्चय करके परम एकान्त के हेतु हैं अर्थात् इन पंचसंस्कारों को श्रद्धाभक्ति पूर्वक धारण करने वाला निश्चय ही भगवद्धाम को जाता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रमाण--ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदाशुभ्रं यो धत्ते नित्यमात्मवान्। तस्य प्रसादं कुरुते विष्णुर्लोकनमस्कृतः॥ श्रीरामपटल, प्रपत्ति रहस्य पृ० २८०। अर्थात् जो संयमी पुरुष स्वच्छ (श्वेत) एवं उद्योमृत्तिका का ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, उस पर भगवान् कृपा करते हैं। पुनः--धृतोर्ध्वपुण्ड्रश्चकार्यै रंकितो हरि लाञ्छनैः। मुद्रापुण्ड्राङ्कनादीनितामसानी विवर्जयेत्॥ भरद्वाज संहिता परिशिष्ट अ० २ श्लो० ६६ गतिबोध पृ० ८। भगवान् श्री हरि के चिन्ह ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धनुर्बाण चक्रादिकों को धारण करें। किन्तु तामसी देवी देवताओं की मुद्रा या छाप न धारण करे। और देखिये--ऊर्ध्वपुण्ड्रमूर्द्धरेखं ललाटे यस्य दृश्यते। चाण्डालोपि स शुद्धात्मा पूज्यएव न संशयः॥ पद्मपुराण पातालखंड अ० ७६ श्लो० २२) अर्थ-जिसके मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड्र अर्थात् खड़ी दो रेखायें दीखती हैं। यदि वह चाण्डाल भी हो तो उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। और वह पूजनीय है इसमें संशय नहीं करना चाहिये। वासुदेवोपनिषद् पंक्ति २२ में लिखा है कि—ऊर्ध्वपदमवाप्नोति। अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करनेवाला ऊँचे पद यानी भगवद्धाम को प्राप्त होता है। गतिबोध पृ० ३८॥

यदि कोई सज्जन कहें कि ये बात तो ब्राह्मणों एवं सन्तों को अथवा पुरुषों के लिये ही है।

न्युनवर्ग वाले व्यक्ति या महिलाओंके लिये नहीं हैं। तो ध्यानसे पढ़िये कि--स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा म्लेच्छा याऽन्त्यज जातयः। ऊर्ध्वपुण्ड्र धरा सर्वे नमस्या देवता इव॥ बृ० ब्र० सं० पा० १ अ० १३ श्लो० ५७ गतिबोध पृ० ३८। अर्थ--स्त्री हो, या वैश्य हो, या शूद्र हो अथवा म्लेच्छ हो, या अन्त्यज (अछूत) हो। यदि ये सब भी ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण किये हों, तो देवता समान नमस्कार करे। पुनः—ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं दृष्ट्वा सर्व पापैः प्रमुच्यते॥७॥ यज्ञ दान तपश्चर्या जप होमादिक च यत। ऊर्ध्वपुण्ड्रधराः कुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम्॥१०॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु सर्वेषां न निषिद्धं कदाचन॥१७॥ तुया धृतोर्ध्वपुण्ड्राणि सर्वयज्ञ फलं लभेत॥३३॥ एक पुण्ड्रं तु नारीणां शूद्राणां च विधीयते॥४३॥ उपर्युक्त ७।१०।१७।३३।४२ नं० के श्लोक पद्मपुराण उत्तर खंड अ० २२५ श्री वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित से लिये गये हैं। मैंने गतिबोध के पृ० २९ से लिये हैं। मनुष्य के मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक देख करके उसकी देह के सब पाप छूट जाते हैं॥७॥ जो मनुष्य यज्ञ, तप, जप और दान एवं होमादि कर्मोंको ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाकर करते हैं। तो उनके कर्मोंका अनन्त

फल होता है ॥१०॥ ऊर्द्ध्वपुण्ड्र तिलक सबको करना चाहिये किसी को निषेद नहीं है ॥१७॥ जो कोई श्रद्धाभक्ति पूर्वक ऊर्द्ध्वपुण्ड्र तिलक को धारण करते हैं, तो उनको सब यज्ञों का फल मिलता है ॥३३॥ स्त्री और शूद्रोंको केवल एक ही तिलक लगाना चाहिये। केवल मस्तक में इनकी यही विधि है ॥५२॥ और ब्राह्मण क्षत्री वैश्यों को "द्वादशैतानि पुण्ड्राणि लिखेत्तस्मिन्यथाक्रमम् ॥ पाराशरीय धर्मशास्त्र उत्तर खंड अ० २ श्लो० १।

नोट:--कुछ सज्जन यत्र तत्र ऐसा कहा करते हैं कि ब्राह्मणों को ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक नहीं लगाना चाहिये। वे सज्जन ध्यान से पढ़ें कि--यद्यपि ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक सभी को लगाने का अधिकार है। तथापि ब्राह्मणको अनिवार्य रूपसे लगाना चाहिये। क्योंकि ब्राह्मण पृथ्वी के देवता माने जाते हैं। और देवताओं को सात्त्विक आहार विहार करते हुये सत्त्व प्रधान भगवान् श्री हरि की उपासना अनिवार्य रूपसे करनी चाहिये। भगवत् उपासना में ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाना अनिवार्य होगा। ब्राह्मणों को श्री हरि के अतिरिक्त किसी तामसी देवो देवताओं की उपासना करनेका अधिकार नहीं है। यदि ब्राह्मण अपना स्वाभाविक अधिकार अर्थात् सर्वश्रेष्ठता का परित्याग करदे। उसे कौन रोकने जाता है। शास्त्रीय सिद्धान्त है कि सात्त्विक प्रधान स्वभाव वालों को भगवान् श्री हरि की, राजसी स्वभाव वालों को ब्रह्मादि देवताओं की, और तामसी भूत प्रेतादिक तामसी देवी देवताओं की उपासना उपयुक्त हैं। ब्राह्मण के लिये तो शास्त्राज्ञा हैं कि--तस्मात्तु ब्राह्मणों नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रन्तु धारयेत्। पुण्ड्रस्यधारणादेव वैकुण्ठं यात्स संशयः॥ इस लिये ब्राह्मणों को उचित है कि नित्य ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक को धारण करे। ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करने से निश्चय ही वैकुन्ठ को जायेगा, इसमें कोई संशय नहीं है। पाराशरीय धर्मशास्त्र उ० खं० अ० २ श्लो० २६। और ब्राह्मणों को त्रिपुण्ड्र लगाना निषेध है। यथा--कपाल दारु भस्मास्थि शुक्ति पाषाण धारिणः। त्रिपुण्ड्र धारिणं विप्रं चाण्डालमिव संत्यजेत् ॥२१॥ अग्रदंशं च शंखे च लिङ्गशूलादि धारणम्। तिर्यक्पुण्ड्र धरं विप्रं राजाराष्ट्रात्प्रवासयेत् ॥२२॥ और भी—तिर्यक्पुण्ड्र धरो विप्रो यत्र तिष्ठति वै गृहे। तद्देशोऽपावन भूतः श्मशानसदृशो भवेत ॥२॥ युक्त श्लोक पाराशरीय धर्मशास्त्र उ० खं० अ० ११ के हैं। मैंने गति-बोध के पृ० ५२ से लिखे हैं। अर्थ--यदि ब्राह्मण मनुष्य या पशुओं की खोपड़ी को धारण करता हो। अथवा हड्डी, सीप, पत्थर धारण करता हो, या त्रिपुण्ड्र धारण करता हो, तो उसको चाण्डालवत जानकर छोड़ दे उससे व्यवहार न करे ॥२१॥ और जो ब्राह्मण नोक वाले लोहे आदि की छड़ी को हड्डी के शंख को, शिवलिंग को, त्रिशूल आदि को और त्रिपुण्ड्र को धारण करता है, तो उसे राजा अपने राज से